नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 2 अंक 12
जनवरी 200[illegible] • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

साम्प्रदायिक कट्टरपंथी फासीवादी राजनीति की नई सरगर्मियां

अयोध्या मुद्दे को उछालकर चुनावी गोटी लाल करने का भाजपाई कुचक्र

सम्पादकीय अग्रलेख

राम मंदिर के मुद्दे को उछालकर लगभग एक दशक तक पूरे देश में जारी रक्तपात और दंगों के विनाशकारी खेल के बाद, भाजपा विभिन्न टुटपुंजिया क्षेत्रीय पार्टियों, अन्य चुनावी पूंजीवादी दलों से छिटके मौकापरस्तों और पतित समाजवादियों के साथ गांठ जोड़कर क़रीब एक वर्ष पहले केन्द्र में सत्तासीन हुई थी।

जैसा कि होना ही था, सत्तासीन होते ही भाजपाइयों ने राम मंदिर के मुद्दे को धीरे से ठण्डे बस्ते में खिसकाकर एक धुर प्रतिक्रियावादी, जनविरोधी हुकूमत का असली खेल खेलना शुरू कर दिया। कहने को उन्हें एक बहुत सटीक बहाना यह मिल भी गया था कि अयोध्या मसला रा.ज.ग. के राष्ट्रीय एजेण्डे का हिस्सा नहीं है। गत एक वर्ष के दौरान भाजपा गठबंधन की केन्द्रीय सरकार ने धुंआधार ढंग से उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को लागू करते हुए साम्राज्यवादी लुटेरों का विश्वास जीतने और टाटाओं-बिड़लाओं-अम्बानियों-बजाजों की तबीयत खुश कर देने में कोई कोर-कसर नहीं रख छोड़ी। वाजपेयी सरकार के मंत्री साम्राज्यवादी देशों के राष्ट्राध्यक्षों-मंत्रियों की आवभगत करते रहे, विश्व बैंक-मुद्राकोष-विश्व व्यापार संगठन के सलाहकारों से निर्देश लेते रहे और विदेशी लुटेरों के अन्तरराष्ट्रीय मंचों पर तथा 'फिक्की', सी.आई.आई. और एसोचैम जैसे भारतीय पूंजीपतियों के संगठनों के मंचों पर जाकर अपनी कारगुजारियों की प्रोग्रेस रिपोर्ट पेश करते रहे और हुक्म बजाते रहे। देश के प्राकृतिक संसाधनों और श्रम की लूट में तथा महाजनी के जरिए लूट के लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों को एकदम खुला हाथ देने के लिए एक के बाद एक क़ानून बनाये गये और नीतिगत फैसले लिये गये। जनता का खून-पसीना निचोड़कर खड़ा किये गये पब्लिक सेक्टर के कारखानों को मिट्टी के मोल देशी-विदेशी पूंजीपतियों को बेचा जाता रहा और यह सिलसिला अभी भी लगातार जारी है। दलाल ट्रेड यूनियन नेताओं की गद्दारी का भरपूर लाभ उठाते हुए एक के बाद एक मज़दूरों के अधिकारों पर डाका डालने का सिलसिला अभी भी जारी है और न्यायपालिका इसमें अत्यन्त सक्रिय पक्षधर भूमिका निभा रही है। हड़तालों को तोड़ने-कुचलने का सिलसिला जारी है। पर्यावरण सुरक्षा की आड़ लेकर सिर्फ राजधानी दिल्ली से ही 25 लाख से अधिक मज़दूरों को हाल हीं में एकमुश्त उजाड़ा जा चुका है। **तमाम दक्षिणपंथी पार्टियों की तरह "राष्ट्रवादी" नारे देती रहने वाली भाजपा ने "स्वदेशी" की रट लगाते हुए विदेशी पूंजी की लूट के लिए पूरे देश को मुक्त चरागाह बना देने के काम को जिस राजनीतिक छिनालपन के साथ अंजाम दिया है, उसे देख नई आर्थिक नीति का सूत्रपात करने वाले राव-मनमोहन गिरोह के सदस्य और भूतपूर्व (और भावी?) तीसरे मोर्चे के शिखण्डी भी दंग हैं।**

> **छंटनी-तालाबंदी, मंहगाई-बेरोज़गारी, देशी-विदेशी थैलीशाहों के आगे साष्टांग दण्डवत, लाखों मज़दूरों को उजाड़े जाने और दमन-उत्पीड़न के मुद्दों को दरकिनार करने के लिए फिर से भड़काई जा रही है धर्मान्धता की विनाशकारी आग**

भाजपाइयों की समस्या यह है कि तहेदिल से हिटलर-मुसोलिनी और फ्रांको के अनुयाई होते हुए भी आज वे न तो बुर्जुआ संविधान को सीधे-सीधे रद्द कर सकते हैं और न ही बुर्जुआ संसदीय चुनावी प्रणाली को ही धता बता सकते हैं। ऐसा इसलिए कि अतीत के अनुभवों से सीखकर साम्राज्यवादी सरपरस्त और देशी सरमायेदार संसदीय चुनावी खेल को आखिरी मुमकिन हद तक जारी रखना चाहते हैं। यही कारण है कि दुनिया के जिन देशों में कुछ पहले तक सैनिक तानाशाहों का शासन था, वहां भी आज पूंजीवादी संसदीय हुक्मतें कायम हैं जो ज्यादा कारगर ढंग से भूमण्डलीकरण की नीतियों को लागू कर रही हैं।

यही वजह है कि चुनावों की मौसम की आहट फिर से सुनाई देते ही भारतीय जनता पार्टी ने और मुख्यतः संघ परिवार के विहिप जैसे संगठनों ने सुर और स्वर बदलकर उग्र हिन्दूवादी तेवर में मन्दिर-निर्माण के मसले को तूल देकर धार्मिक जुनून उभाड़ने का काम शुरू कर दिया है।

वोट बैंक की बुर्जुआ राजनीति का अपना अन्तर्निहित तर्क होता है, जो हर हाल में शासक वर्ग की सेवा करता है, लेकिन संसदीय बुर्जुआ पार्टियों के सामने कई बार परेशानियां भी पैदा करता है और उन्हें अपने चुनावी जनाधारों को बचाने के लिए तरह-तरह की

(पृष्ठ 4 पर जारी)

एनरान ने शिक्षित किया और स्वदेशी झण्डाबरदारों ने जनता को चूना लगाया

उदारीकरण का सच क्या है, इसे जानने का सबसे सटीक उदाहरण है अमेरिका की बहुराष्ट्रीय कम्पनी एनरॉन का महाराष्ट्र स्थित डाभोल बिजली परियोजना जिसने पूरी दुनिया के पैमाने पर सबसे महंगे दर पर विद्युत उत्पादन का करिश्मा कर दिखाया है। जो लगातार महंगी ही होती जा रही है। अक्टूबर'99 में इसकी कीमत रु. 7.80 तक पहुंच चुकी थी जो महाराष्ट्र में ही सरकारी और निजी क्षेत्र द्वारा पैदा किये जाने वाली दर की तीन गुने से चार गुने तक महंगी हैं उस पर से तुर्रा यह कि बिजली बोर्ड विद्युत खरीदे या नहीं, उसे 'क्षमता शुल्क' (कैपेसिटी चार्ज) के रूप में 94.59 करोड़ रुपये चुकाने ही पड़ रहे हैं। हालत यह है कि महाराष्ट्र बिजली बोर्ड दिवालिया होने के कगार पर पहुंचता जा रहा है।

दरअसल, 1991 में नरसिंहराव सरकार द्वारा शुरू उदारीकरण-निजीकरण मुहिम के तहत विद्युत उत्पादन के क्षेत्र में देशी-विदेशी निजी कम्पनियों को आमंत्रित किया था। इसी मुहिम के तहत आठ फास्ट ट्रैक बिजली उत्पादन संयंत्रों की स्थापना को अनुमति मिली थी। इन्हीं में से एक एनरॉन बिजली परियोजना को 1993 में मंजूरी दी गयी थी। उस

(पृष्ठ2 पर जारी)

भीतर के पृष्ठों पर

- दिल्ली विद्युत बोर्ड के निजीकरण की तैयारियां : क्या कर्मचारी भी मुकाबले को तैयार हैं? (3)
- कोलार का सोना खदान बंद : हजारों मजदूर भुखमरी के हवाले (3)
- चीन में मेहनतकश जनता का संघर्ष (5)
- जनमुक्ति की अमर गाथा : चीनी क्रांति की सचित्र कथा (6-9)
- मक्सिम गोर्की की कहानी : बाज का गीत (11)
- संसदीय वामपंथियों का दोहरापन (12)

डाककर्मियों की चौदह दिनी देशव्यापी हड़ताल

एक जबर्दस्त संघर्ष और उसकी अफसोसनाक हार तथा कुछ जरूरी सबक

गुजरे वर्ष के अंतिम महीने में देशभर के डाक-कर्मचारियों ने 14 दिनों लम्बी जबर्दस्त हड़ताल के द्वारा सत्ताधारियों और व्यापक मेहनतकश जनता दोनों को कुछ जरूरी भविष्य-संकेत दिये। साथ ही इस हड़ताल की अफसोसनाक हार ने ट्रेड यूनियन आंदोलन के मौकापरस्त, सत्ताभोगी, अनुनय-विनयवादी, रीढ़विहीन नेतृत्व को एक बार फिर कटघरे में खड़ा करते हुए न केवल डाककर्मियों के लिए बल्कि पूरे मजदूर वर्ग के लिए कुछ निहायत जरूरी सबक पेश किये।

पिछले वर्ष भर के दौरान केन्द्र और राज्य के सरकारी कर्मचारियों तथा बैंकों, दूरसंचार, बिजली और सार्वजनिक क्षेत्र के विभिन्न उपक्रमों के कर्मचारियों के देशव्यापी एवं राज्यव्यापी हड़तालों-प्रदर्शनों तथा देशभर के निजी क्षेत्र के मेहनतकशों के यहां-वहां जारी संघर्षों की आखिरी कड़ी 6 लाख डाककर्मियों की 5 दिसम्बर से 18 दिसम्बर 2000 तक जारी हड़ताल के रूप में सामने आई।

उल्लेखनीय है कि आजादी के बाद सरकारी क्षेत्र में इतनी व्यापक और लम्बी हड़ताल सिर्फ रेलकर्मियों ने 1974 में 21 दिनों तक की थी। उस व्यापक मजदूर उभार से सत्ताधारियों में पैदा हुआ भय भी 1975 में आपातकाल लागू करने के पीछे का एक कारण था। इससे पहले 1946 में जब पूरे देश में उपनिवेशवाद विरोधी ज्वार शिखर पर था, तब डाककर्मियों ने 21 दिनों लम्बी देशव्यापी हड़ताल की थी।

हड़तालें मजदूरों के क्रांतिकारी संघर्षों की प्राथमिक पाठशाला होती है-यह उक्ति हार और जीत दोनों ही स्थितियों में लागू होती है। इसलिए ये बेहद जरूरी है कि इस जबर्दस्त देशव्यापी हड़ताल की पराजय के कारणों की पड़ताल की जाये और आगे के लिए सबक निकाले जायें।

•

दिसम्बर 2000 की डाक हड़ताल की मांगें मुख्यतः आर्थिक थीं। पांचवें वेतन आयोग की रिपोर्ट में निहायत मनमाने ढंग से नया वेतन ढांचा तैयार किया गया था। विशेषकर वर्ग-द और वर्ग-स को जो वेतनमान दिये गये थे उनसे कोई भी कर्मचारी संतुष्ट नहीं था और अपने को ठगा गया महसूस कर रहा था। इन विसंगतियों के खिलाफ

(पृष्ठ 4 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

सुधारवाद से नहीं, क्रान्तिकारी तरीके से समाज बदलेगा

'बिगुल' के 6 अंक प्राप्त हुए। मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई।

सितम्बर, 2000 अंक में प्रकाशित लेख "मज़दूरों का समाजवाद क्या है" अच्छा लगा। इस सन्दर्भ में अगर कोई अन्य पुस्तक हो तो अवगत करायें। 'बिगुल' के अंकों में ऐसे लेख प्रकाशित करते रहें।

विगत अंकों में प्रकाशित 'चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा' हम जैसे कार्यकर्ताओं के लिये ऊर्जा का स्रोत हैं। इसी प्रकार अक्टूबर क्रान्ति के बारे में भी प्रकाशित करें।

मैं एक खेतिहर मज़दूर हूं। मेरे सामने दो तरह का संघर्ष है – एक रोटी का और दूसरा समाजवादी क्रान्ति का। मेरे अन्दर एक तड़प है कि कैसे मज़दूरों का राज कायम हो? पूंजीवाद के सर्वनाश के कार्यों में लग जाना एक पुण्य कार्य है। इसलिए मैं खेतिहर मज़दूरों को संगठित करने के कार्यों में लग जाना चाहता हूं। लेकिन ग्रामीण मज़दूरों को संगठित करने में ढेरों दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। लोग जल्दी से परिणाम चाहते हैं। इसके लिये हमें 'बिगुल' के दिशा-निर्देश की आवश्यकता है।

विगत दिनों मैं एक सुधारवादी संगठन से जुड़ा रहा, लेकिन 'बिगुल' के सम्पर्क में आने के बाद मैं जान चुका हूं कि समाज सुधारवाद से नहीं, क्रान्तिकारी तरीके से बदलेगा और इसके लिए हमें क्रान्तिकारी विचारों से लैस होना पड़ेगा।

मैंने अपने निजी ज़िन्दगी में यह अनुभव किया है कि इस लुटेरी दुनिया में सारे रिश्ते-नाते रुपये-पैसे के इर्द-गिर्द बनते और तय होते हैं। न कोई बाप है, न कोई बेटा। रुपये की प्रधानता ने इस समाज को अमानवीय बना दिया है। ऐसे समाज में, इसे बदलने के संघर्ष के साथ ही रहा जा सकता है। इसके लिए हमें भगतसिंह की राह पर चलना होगा। अपना पूरा जीवन और समय इसी के लिए समर्पित करना होगा।

■ **दशरथ प्रसाद कुशवाहा**
ग्राम-पोस्ट- समरी,
टीकमगढ़, (म.प्र.)

दयनीय स्थितियों में काम कर रहे हैं लुधियाना के अप्रवासी मज़दूर

आज़ादी आई भी तो क्या कायम है गुलामी की रस्में

मज़दूरों का जीवन आज भी है सरमायेदारों के वश में

पंजाब के जिस औद्योगिक महानगर लुधियाना ने होजरी, साइकिल, कल-पुर्जे आदि के उत्पादन में विश्व में अपना स्थान बना लिया है, वहां के श्रमिकों की स्थिति बेहद दयनीय है। यहां के छोटे-बड़े विभिन्न कारखानों में काम करने वाले 90 प्रतिशत कारीगर प्रवासी मज़दूर हैं। यहां जो प्रवासी श्रमिक काम करते हैं उनमें से अधिकतर बिहार, उत्तर प्रदेश, बंगाल, केरल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र के हैं। इनकी संख्या 10-12 लाख है। काम की तलाश में अपनी जगह-जमीन से उजड़कर प्रतिदिन लगभग पांच-छह सौ लोग यहां आते हैं। यहां के अप्रवासियों में से दस प्रतिशत आबादी शहर में छोटी दुकान या खोखा चलाती है अथवा फेरी लगाकर जीवन-यापन कर रही है। शेष 90 प्रतिशत श्रमिक विभिन्न कारखानों में अथवा निजी दुकानों में कार्य करते हैं। यहां के कारखानों में हाड़तोड़ मेहनत के बावजूद मज़दूरों को मामूली दिहाड़ी अथवा वेतन मिलता है। कारखानेदार श्रम कानूनों की खुलेआम धज्जियां उड़ाते हैं।

ज्यादातर कारखानों में नियमित श्रमिकों को भी महज हजार-बारह सौ रुपये पगार मिलती है, जबकि दस्तखत ज्यादा राशि पर करवाई जाती है। ज्यादातर कारखानों में बगैर ओवरटाइम भुगतान के 12-12 घण्टे की शिफ्ट ड्यूटी में काम करने के लिए मज़दूर अभिशप्त है। जब किसी कारखाने में कोई श्रमिक दुर्घटना का शिकार होता है तो वहां का प्रबन्धतन्त्र ज्यादा से ज्यादा प्राथमिक उपचार करवाकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेता है। ऐसी स्थिति में प्रायः श्रमिक को विकलांगता की स्थिति में अपने देश (घर) वापस लौटना पड़ता है। कारखानों में अक्सर प्रबन्धकों और उनके पालतू गुर्गों (चमचों) द्वारा छोटी-छोटी गलतियों के बहाने से श्रमिकों की पिटाई भी होती है। ऐसे मौकों पर पुलिस भी प्रायः मालिकों के पक्ष में ही खड़ी रहती है। यहां के अप्रवासी मज़दूरों को परदेशी होने के चलते ज्यादातर जगहों पर दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। रेलवे स्टेशन का आरक्षण काउण्टर हो या ट्रेन, डाकघर से मनीआर्डर भेजना हो अथवा बैंक में काम हो, हर जगह इनकी लूट और शोषण जारी है।

■ **विजय नारायण/अरविन्द कुमार**
मोल्डर एण्ड स्टील वर्कर्स यूनियन
लुधियाना (पंजाब)

स्टालिन का साक्षात्कार: आज के दौर के लिए ज़रूरी सामग्री

'बिगुल' नवम्बर अंक प्राप्त हुआ। मेहनतकश गरीब आबादी के संघर्ष के प्रति आप सबकी प्रतिबद्धता का सम्मान करता हूं। अक्टूबर अंक में जर्मन कम्युनिस्ट पार्टी के एक सदस्य हर्जोग को स्टालिन द्वारा दिये गये साक्षात्कार में बोल्शेविकीकरण के बारे में अच्छी जानकारी मिली। इस साक्षात्कार में बिन्दुवार जो बातें दी गई हैं उसकी रोशनी में किसी क्रान्तिकारी संगठन को बनाने, उसे सुदृढ़ करते हुए अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने और अपने लोगों को शिक्षित-जागरूक करके व्यापक सांगठनिक क्रिया-कलापों के लिए एक जोरदार आवाज़ बुलन्द की जा सकती है। फिलहाल यह अत्यंत रोचक और ज्ञानवर्द्धक लगा। यह साक्षात्कार संघर्ष कर रहे लोगों के लिए व्यवहारिक एवं जानकारी देने वाला होगा। मक्सिम गोर्की 'एक छोटे लड़के और एक छोटी लड़की की कहानी' बहुत अच्छी एवं संवेदनशील लगी।

■ **रमाकांत शर्मा**
ए.जी. ऑफिस, इलाहाबाद

स्वदेशी झण्डाबरदारों ने जनता को चूना लगाया

(पृष्ठ 1 से आगे)

वक्त महाराष्ट्र में शरद पवार की सरकार थी। इस मसले पर सबसे ज्यादा चिल्ल-पों मचाने वाली "स्वदेशी" भाजपा ने 1996 में सत्ता में आते ही तेरह दिनों की अल्पायु में अपने सबसे महत्वपूर्ण और एकमात्र काम के रूप में इस जनविरोधी समझौते को न केवल अंतिम रूप दिया था, वरन न्यूनतम 16 प्रतिशत मुनाफे की काउण्टर गारण्टी की पुष्टि करते हुए और ज्यादा खतरनाक 1444 मेगावाट के दूसरे चरण को भी मंजूरी दी थी। एनरॉन कम्पनी शुरू से ही अपनी परियोजना के लिए सुगम रास्ता बना रही थी। इस समय एनरॉन, जनरल इलेक्ट्रिक तथा बेश्टेल कम्पनी ने सरकार द्वारा समर्थन हासिल करने के लिए देश के बौद्धिक तबके के प्रभावशाली हिस्से को भी लामबन्द किया था तथा सत्ता पक्ष के साथ-साथ विपक्ष के बड़े नेताओं तथा महत्वपूर्ण अफसरों आदि को "शिक्षित" करने के लिए लगभग 70 करोड़ रुपये (20 मिलियन डॉलर) खर्च कर दिया था। मजेदार बात यह है कि इस परियोजना को अरब सागर में फेंक देने के वायदे के साथ सत्तासीन भाजपा-शिवसेना गठबन्धन सरकार भी "शिक्षित" हो गयी और इस परियोजना को पारित कर दिया था।

यहीं यह तथ्य भी गौरतलब है कि आज एनरॉन द्वारा प्रदत्त जिस विद्युत की कीमत रु. 7.80 पड़ रहा है उसे खुद महाराष्ट्र राज्य बिजली बोर्ड (एम.एस.ई.बी.) अपने संयंत्रों में रु. 2.00 प्रति यूनिट तथा टाटा पावर कम्पनी जैसे निजी उत्पादकों की बिजली को अधिकतम कीमत रु. 2.80 प्रति यूनिट है। यानी एनरॉन तथा संयंत्रों की बिजली की कीमतों में भारी अन्तर है। एनरॉन समझौते में यह एक महत्वपूर्ण प्रावधान है कि महाराष्ट्र विद्युत बोर्ड को क्षमता शुल्क हर हाल में चुकाना है। इसके तहत 740 मेगावाट के पहले चरण के लिए विद्युत बोर्ड को हर महीने लगभग 95 करोड़ रुपये चुकाने पड़ रहे हैं। 1444 मेगावाट के दूसरे चरण में उसे लगभग 383 करोड़ रुपये और चुकाने पड़ेंगे। इस प्रकार अगले साल के अन्त तक महाराष्ट्र विद्युत बोर्ड अथवा सरकार के कुल लगभग 478 करोड़ रुपये हर हाल में चुकाने पड़ेंगे, चाहे वह कम्पनी से विद्युत खरीदे अथवा नहीं। इस परियोजना के कारण एम.एस.ई.बी. को मई'99 से नव.'99 तक लगभग 249.28 करोड़ रुपये तथा दिस.'99 से नव.2000 तक 828 करोड़ रुपये का नुकसान हो चुका है। मौजूदा वित्त वर्ष में एम.एस.ई.बी. एनरॉन को 1800 करोड़ रुपये दे चुकी है। इसलिए अब महाराष्ट्र बिजली नियामक बोर्ड ने एम.एस.ई.बी. को सस्ते स्रोतों से बिजली खरीदने को कहा है।

बहरहाल, कानूनी बाध्यताओं के चलते एम.एस.ई.बी. समझौते की वित्तीय पहलुओं को फिर से तय नहीं कर सकता है और उसे तय करना भी नहीं है। ऐसी स्थिति में वह एनरॉन से बिजली लेना बन्द नहीं करेगा। कुछ हलकों में यह आशंका प्रकट की जा रही है कि सरकार द्वारा लगातार घाटे की स्थिति में एम.एस.ई.बी. को बीमार घोषित करके डाभोल बिजली निगम को एक राष्ट्रीय परियोजना में तब्दील कर दिया जाए।

आज एक बार फिर अपने देश में इस मसले पर सत्ता के गलियारे से लेकर मीडिया तक काफी हड़बोंग मची है। मीडिया तक में हल्ला मचाया जा रहा है कि सरकार ने यदि इस समझौते को तोड़ा तो उसे 20 हज़ार करोड़ रुपये की राशि की अदायगी करनी पड़ेगी। कहीं ऐसा तो नहीं कि यह शोक भी प्रायोजित हो ताकि लोगों को भय दिखाकर एनरॉन की लूट जारी रहे। वैसे शोर मचाने वालों में एक तबका वहां भी है जो एनरॉन द्वारा "शिक्षित" नहीं हो पाया है। मामला चाहे जो हो, हर तरह से टैक्स तो आम जनता को ही भरना होगा।

–राकेश

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों का नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रांन्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

♦ शहीद पुस्तकालय, जनगण होम्यो सेवा सदन, **मर्यादपुर**, मऊ ♦ मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुरा (निकट रोडवेज), मऊनाथभंजन, मऊ ♦ जनचेतना, जाफरा बाजार, **गोरखपुर** ♦ विजय इन्फारमेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, **गोरखपुर** ♦ विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी.जी. कालेज, **बड़हलगंज**, गोरखपुर ♦ ओमप्रकाश, 69, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपर मिल रोड, निशातगंज, **लखनऊ** ♦ जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, **लखनऊ**, (शाम 5 से 8·30) ♦ राहुल फाउण्डेशन, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, **लखनऊ** ♦ विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, **लखनऊ** ♦ विजय कुमार, 55/3, ई.डब्ल्यू.एस., आवास विकास, **रुद्रपुर** (ऊधमसिंहनगर) ♦ रामपाल सिंह, भारतीय जीवन बीमा निगम, आवास विकास, **रुद्रपुर** (ऊधमसिंहनगर) ♦ रवीन्द्र कुमार, भारतीय जीवन बीमा निगम, शाखा कार्यालय, पन्तनगर ♦ कृष्णगोविन्द सिंह, बी-18, बिड़ला छात्रावास, बी.एच.यू. **वाराणसी** ♦ प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, विश्वनाथ मंदिर गेट, बी.एच.यू. **वाराणसी** ♦ राजीव वर्मा द्वारा डा. जे.पी. वर्मा, बी.पी. 82, पटेलनगर, **मुगलसराय**, वाराणसी ♦ राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, **सोनभद्र** ♦ सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार-एक, **नई दिल्ली** ♦ ललित सती, एल.आई.सी., फैज रोड शाख, दिल्ली ♦ नई किरण पुस्तक भंडार, एफ-56, हरकेश नगर, ओखला, नई दिल्ली, ♦ पंकज कुमार, 256, मॉडल टाउन, सोनीपत, हरियाणा ♦ डी. के. सचान, कृषि विज्ञान केंद्र, विकास भवन, नई कलक्ट्रेट, **गाजियाबाद** ♦ सुनील कुमार सिंह, सेक्टर-12 बी, 3159, बोकारो इस्पातनगर, **बोकारो** ♦ गणपतलाल, ग्राम काजी रसूलपुर, पो. तेघड़ा, **बेगूसराय** ♦ पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, **पटना** ♦ समकालीन प्रकाशन (प्रा.) लि. पुस्तक बिक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, **पटना** ♦ विमर्श, 22, स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसल चौक, जबलपुर ♦ नरभिन्दर सिंह, द्वारा डा. सुखदेव हुन्दल, ग्रा/पो. **सन्तनगर**, जिला-सिरसा ♦ राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मंदिर, प्रधान नगर सिलीगुड़ी, **दार्जीलिंग** ♦ बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, **कलकत्ता** ♦ शर्मा बुक स्टाल, थाना रोड, चराली, तिनसुकिया नेपाल ♦ विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवनपथ, बुटवल, रुपनदेई नेपाल ♦ विशाल पुस्तक सदन, बिजुवार बाजार प्यूठान राप्ती अंचल ♦ विशाल पुस्तक पसल अस्पताल लाइन, बुटवल, लुम्बिनी, नेपाल

कोलार का सोना खदान बन्द : हज़ारों मज़दूर भुखमरी के हवाले

(बिगुल प्रतिनिधि)

एशिया की सबसे पुरानी तथा सबसे गहरी कोलार की सोना खदानें आज कब्रगाह में तब्दील हो चुकी हैं। 120 साल पुराने इन खदानों में, बेहद कठिन परिस्थितियों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी काम करने वाले यहां के हजारों मज़दूर दर-दर भटकने को मज़बूर हैं।

विगत वर्ष (फरवरी'2000) में सरकार ने कोलार के सोना खदान में दी जाने वाली सरकारी सहायता के बन्दी का एलान करते हुए मज़दूरों के 'स्वैच्छिक अवकाश योजना' (वी.आर.एस.) के लिए 31 मार्च की अन्तिम तिथि घोषित कर दी। इसके तहत दो लाख रुपये तक का पैकेज उन मज़दूरों के लिये घोषित किया था, जिनकी चौथी पीढ़ी यहां कार्यरत है। उस वक्त सरकार ने यहां के मज़दूरों को सीधे धमकी देते हुए कहा था कि जो मज़दूर "स्वैच्छिक" अवकाश नहीं लेंगे उनकी "जबरिया" छंटनी कर दी जाएगी।

मज़दूरों के संघर्ष के कारण जब सरकार की यह योजना "फलीभूत" नहीं हुई तो पुन: पिछले दो नवम्बर को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल ने वी.आर.एस. के संशोधित पैकेज को मंजूरी देते हुए "स्वैच्छिक अलगाव योजना" (वी.एस.एस.) की घोषणा की (यानी स्वेच्छा से सोना खदान को छोड़कर अन्यत्र समायोजन)। मंत्रिमण्डल ने साफ तौर पर कह दिया कि 30 दिनों के भीतर जो मज़दूर इस योजना का "लाभ" नहीं उठा लेगा उसकी नौकरी स्वत: समाप्त हो जायेगी।

सरकार का मानना है कि अब इन खदानों में सोने का भण्डार खत्म हो रहा है और अब सोना निकालना मुनाफे का धंधा- नहीं रहा। 'भारत गोल्ड माइन्स लिमिटेड' के प्रबन्ध निदेशक का कहना है कि, 1979-80 में जब सोने की कीमतों में अचानक बढ़ोत्तरी हो गयी थी, के अलावा यह सोना खदान कभी भी मुनाफे में नहीं चली।

पहली बात तो यह है कि इस खदान में अभी भी सोने का प्रचुर भण्डार मौजूद है। 1995 में 'संसदीय स्टैण्डिंग कमेटी' ने यहां के सोना खानों का दौरा करने के बाद अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए बताया था कि, "कोलार गोल्ड फील्ड्स के परत की पट्टी 80 किलोमीटर लम्बी है, जिसमें से महज 8 किलोमीटर तक ही खनन किया गया है। अभी तक वहां 72 किलोमीटर की परत अनछुई है।"

जहां तक घाटे का सवाल है तो इसकी जिम्मेदार खुद सरकारें रही हैं, उनकी भ्रष्ट नौकरशाही-अफसरशाही रही है। दुनिया में सोने की कीमतों में वृद्धि के बावजूद 1980 तक सोना 1947 के दर पर बेची जाती रही। बाद में भी यह वृद्धि घाटे को कम करने वाली नहीं रही। कभी भी इसे बाज़ार भाव पर नहीं बेचा गया। दूसरे, सोना निकालने में घटिया तकनीक के इस्तेमाल से सोना खनन यहां महंगा पड़ता रहा है और भारी मात्रा में सोने की बर्बादी होती रही है। कारखाना खानों के बाहर पड़े 3.3 करोड़ टन कचरे के ढेर में 12 टन सोना बर्बाद पड़ा है, जिसे धातुशोधन कारखाने के माध्यम से काम में लाया जा सकता है। तीसरे, प्रबन्धकों-अधिकारियों की मिलीभगत से सोने की भारी चोरी से घाटा लगातार बढ़ता गया है। "घाटे" के इन सभी कारकों में कहीं से भी मज़दूर नहीं आते हैं तो फिर इसका खामियाज़ा भला वे क्यों भुगतें? 120 साल पुराने, तमिलनाडु और आन्ध्रप्रदेश की सीमाओं को छूता हुआ कर्नाटक के कोलार क्षेत्र में स्थित इस सोना खदान ने 800 टन से ज्यादा सोना पैदा किया है, जिसकी कीमत 45,000 करोड़ रुपये के बराबर है। दुनिया के पैमाने पर एकमात्र यहीं की खानें हैं जो 1320 किलोमीटर लम्बी सुरंगों को 8.5 वर्ग किलोमीटर के इलाके से जोड़ती है, जहां 64 किलोमीटर लम्बा खान का रास्ता है और जहां की गहरी खानें 13000 फीट तक नीचे चली गई हैं।

'सिलकोसिस' और 'तपेदिक' जैसे खतरनाक बीमारियों से जूझते हुए और तमाम हादसों में अपने 6 हजार से ज्यादा मज़दूर साथियों को खो देने के बावजूद यहां काम करने वाले अधिकतर मज़दूर तीन-चार पीढ़ियों से जी-तोड़ काम में लगे रहे हैं। एक समय ऐसा भी था जब यहां 34,631 मज़दूर काम करते थे। लेकिन जन-विरोधी 'नई आर्थिक नीतियों' के लागू होने के साथ ही तमाम सार्वजनिक प्रतिष्ठानों की तरह यहां भी गाज गिरना शुरू हो गया और लोग अपनी जीविका से हाथ धोते चले गये। 1991-92 में यहां मज़दूरों की संख्या घटाकर 10,388 कर दी गई जो घटते हुए 1998-99 में महज 4,345 की संख्या तक सिमट गई थी। और अब पूर्णत: सफाये की घोषणा। खदान बन्दी से हज़ारों की संख्या में बेरोजगार मज़दूरों के सामने जीवन-मरण का प्रश्न खड़ा हो गया है। इस इलाके में न तो कोई उद्योग-धन्धे ही विकसित हुए हैं और ना ही खेती लायक ज़मीन ही बची है। खदानों की खुदाई से यहां की ज़मीन भी खेती योग्य नहीं रह गई है। इस इलाके में 13 हज़ार एकड़ भूमि परती पड़ी है, जिसे प्रयास करके खेती योग्य तो बनाया जा सकता है, लेकिन सरकार इसे भी मज़दूरों को देने के लिये तैयार नहीं है।

इस खदान के बन्द होने से महज खदान मज़दूरों के ही समक्ष जीवन-मरण का प्रश्न नहीं पैदा हुआ है, बल्कि यहां की भुखमरी और उजड़ती बस्ती से चायखानों से लेकर सब्जी-तेल-मसाला बेचकर जीवन-यापन करने वाले छोटे-बड़े दुकानदार भी अस्तित्व का संकट झेल रहे हैं। किसी वक्त में जगमगाती कोलार की बस्तियां आज वीरानगी में तब्दील होती जा रही हैं। उदारीकरण के जहरीले नाग ने तमाम सार्वजनिक उपक्रम के मज़दूरों की तरह कोलार के मज़दूरों को भी डस लिया है। 120 साल तक पीढ़ी-दर-पीढ़ी निचोड़ने के बाद यहां के मज़दूरों को बेहाल छोड़ दिया गया है।

कारखाने में गैस रिसने से मज़दूर की मौत:

मुनाफे की अंधी हवस और दुर्घटनाओं के शिकार होते मज़दूर

(बिगुल संवाददाता)

मुनाफे की अंधी हवस ने इंसानी ज़िंदगी को बेहद सस्ता बना दिया है। बेहद कठिन और खतरनाक परिस्थितियों में काम करने और जीने मरने के लिये अभिशप्त हो चुका है मज़दूर। कारखानों में होने वाली दुर्घटनाओं और उससे होने वाली मौत की घटनाएं इधर लगातार बढ़ती जा रही हैं।

अभी विगत दिनों, गज़रौला औद्योगिक क्षेत्र में स्थित भरतीया औद्योगिक समूह के एक कारखाने 'वाम आर्गेनिक लिमिटेड' में ऐसी ही घटनाएं घटित हुई। पहली घटना विगत दिसम्बर माह की है, जब यहां के एक श्रमिक मुनीश चन्द्र शर्मा को प्लांट में मिथेन गैस से दर्दनाक मौत हो गई।

मज़दूरों के अनुसार इस दुर्घटना की मूल वजह कारखाने में 'मैन पावर' की कमी व मशीन उपकरण का अभाव था। यहां के बायो गैस विभाग में तीन प्लांट हैं। पहले प्रत्येक प्लांट में दो ऑपरेटर व एक इंचार्ज की ड्यूटी प्रत्येक पाली में होती थी। लेकिन विगत दिनों भरतीया ग्रुप द्वारा पूना में एक नया कारखाना लगाने के बाद यहां से श्रमिकों का एक हिस्सा स्थानान्तरित कर दिया गया। इसके अतिरिक्त कारखाने में निचले स्टाफ के 42 कर्मियों की छंटनी हुई थी। अब बचे हुए कर्मियों से कारखाना चलाया जा रहा है। ज़ाहिरा तौर पर मज़दूरों पर अतिरिक्त बोझ बढ़ गया है।

घटना के दिन मुनीश चन्द्र रात्रि पाली में एक प्लांट में ड्यूटी पर अकेला था। रात्रि लगभग 1.30 बजे ब्लोवर ट्रिप होने पर मुनीश प्लांट को चेक करने गया। उसने ब्लोवर में वाटर सील लगाने को प्रयास किया। संभवत: वाटर सील टूटने से ही अमोनिया गैस का रिसाव होने लगा। सुबह जब पहली पाली के लोग प्लांट में पहुंचे तो मुनीश बेहोश पड़ा था। उसे तत्काल दिल्ली स्थित अपोलो अस्पताल भेजा गया जहां उसे मृत घोषित कर दिया गया। प्रबन्धकों ने आनन-फानन में उसका क्रिया कर्म करने की तैयारी कर ली। निकट के ब्रजघाट (गढ़) पर पूरी तैयारी हो चुकी थी कि यह खबर फैल गयी और देखते ही देखते क्षेत्र के तमाम मज़दूर पहुंच गये और प्रबंधकों को घेर लिया। ठीक ऐसे वक्त में पुलिस प्रशासन का लवाज़मात भी पहुंच गया और मामले की नज़ाकत को देखते हुए उसने लाश को परिजनों को दिलवाया तथा प्रबन्धकों से बतौर मुआवजा 7 लाख रु. दिलवाने की घोषणा करवाई। प्रबन्ध तन्त्र ने हालांकि यह घोषणा कर दी लेकिन वह यही प्रचारित करता रहा कि मुनीष कारखाने में सोता पाया गया।

अभी इस हादसे से मज़दूर उबर भी नहीं पाये थे कि कारखाने में वेल्डिंग करते हुए एक मज़दूर की गिरकर मृत्यु हो गई और प्रबन्धकों ने बड़ी ही सफाई से इस मामले को रफा-दफा कर दिया।

ये घटनाएं तो महज कुछ बानगी है। आये दिन श्रमिक, विशेष रूप से ठेका श्रमिक दुर्घटना के शिकार होते रहते हैं। अंग-भंग और विकलांगता की स्थिति तो प्राय:. घटित होती रहती है और यदा-कदा मामलों को छोड़कर सारे मामले प्रबन्धकों द्वारा यूं ही निपटा दिये जाते हैं।

जिन कारखानों में मज़दूर संगठित हैं वहां तो वे लड़कर फिर भी एक हद तक सुरक्षा हासिल कर लेते हैं, लेकिन जहां मज़दूर एकताबद्ध नहीं हैं वहां ज्यादा दमनकारी और अमानवीय स्थितियों का उन्हें सामना करना पड़ता है। 'वाम आर्गेनिक लि.' में भी यही स्थिति है और प्रबन्धतंत्र का दबाव उन्हें यहां ज्यादा झेलना और आये दिन दुर्घटनाओं का उन्हें शिकार होना पड़ता है।

मेहनतकश साथियों के लिए कुछ जरूरी पुस्तकें

बिगुल पुस्तिका श्रृंखला

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा- लेनिन (5/-)

मकड़ा और मक्खी -विल्हेल्म लीब्कनेख्त (2/-)

ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके -सर्जी रोस्तोवस्की (2/-)

अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं (10/-)

समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति (12/-)

बिगुल विक्रेता साथी से मांगें या इस पते पर 12 रुपये रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें :

जनचेतना, डी-68, निरालानगर, आईटी चौराहा, लखनऊ

दिल्ली विद्युत बोर्ड के निजीकरण की तैयारियां

क्या कर्मचारी भी मुकाबले को तैयार हैं?

दिल्ली (बिगुल संवाददाता)। दिल्ली विद्युत बोर्ड पर भी संकट के बादल मंडरा रहे हैं। दिल्ली सरकार ने विभिन्न चरणों में बोर्ड के निजीकरण की योजना तय कर ली है। पिछले दिनों उसने एक अध्यादेश के द्वारा दिल्ली विद्युत बोर्ड को पांच निगमों में बांटने का फैसला किया है। इन पांच निगमों में से तीन निगम वितरण के लिए और एक-एक निगम बिजली उत्पादन और पारेषण (ट्रांसमिशन) के लिए होंगे। जाहिर है अगला चरण विनिवेश का होगा यानी मुनाफा कमाने के लिए पूंजीपतियों को इस क्षेत्र में आमंत्रित करना।

पिछले कुछ वर्षों से, जबसे निजीकरण-उदारीकरण की हवा चली है, अचानक सभी राज्य सरकारें बिजली संकट से बहुत अधिक चिन्तित हो उठी हैं। इस संकट से छुटकारा पाने के नाम पर सभी सरकारें बिजली को निजी हाथों में सौंप देना चाहती हैं।

चाहे वह दिल्ली हो, उत्तर प्रदेश या फिर उड़ीसा, सभी जगह बिजली संकट का निदान एक ही है – बोर्ड भंग करो, निगम बनाओ, निजीकरण करो, कर्मचारियों की छंटनी करो, बिजली की दरें बढ़ाओ।

बिजली संकट का एक बहुत बड़ा कारण यह बताया जाता है कि अवैध कनेक्शन लेकर झुग्गी-झोपड़ी वालों द्वारा बिजली चोरी की जाती है। दिल्ली में कहा जा रहा है कि 45 फीसदी बिजली चोरी हो जाती है क्योंकि यहां बड़े पैमाने पर झुग्गी-बस्तियां और अनधिकृत कालोनियां हैं। जबकि हकीकत यह है कि बड़े बिजली-चौरों के बारे में सरकार और मीडिया मौन हैं। कौन नहीं जानता कि सरकार उद्योगपतियों को सस्ती दर पर बिजली उपलब्ध कराती है, इसके बावजूद छोटे-छोटे कारखानों से लेकर बड़े-बड़े उद्योगों तक बिजली विभाग के अधिकारियों को खिला-पिलाकर जबरदस्त बिजली चोरी की जाती है। सरकारी भोंपू यह नहीं बताते कि विभिन्न बिजली बोर्डों का किन-किन उद्योगपतियों के ऊपर कितना बकाया है। बिजली चोरी के मामले में 'नेशनल वर्किंग ग्रुप ऑन पावर सेक्टर' के संयोजक अशोक राव कहते हैं कि जब पुलिस बल और प्रशासनिक शक्ति से लैस सरकार बिजली चोरी नहीं रोक पाई तो निजी कम्पनियां इसे कैसे रोकेंगी?

दिल्ली विद्युत बोर्ड के निजीकरण के बाद कर्मचारियों की छंटनी होना तय है। बोर्ड में करीब पच्चीस हजार कर्मचारी हैं। इन कर्मचारियों को सरकार यह आश्वासन दे रही है कि निजीकरण के बाद भी उनकी सेवा शर्तें वही रहेंगी। लेकिन कर्मचारियों को अन्य सरकारी क्षेत्रों में हुए निजीकरण के दुष्प्रभाव बता रहे हैं कि उनका भविष्य अंधकारमय है।

उन्हें 'सर्विस कंडक्ट रूल' की आड़ में लापरवाही और अनुशासनहीनता का इल्जाम लगाकर बर्खास्त किया जा सकता है। इसके अलावा स्वैच्छिक सेवानिवृतियोजना के मकड़जाल में फंसाकर बाहर किया जा सकता है। सरकार और निजी कम्पनियां सब स्थितियों के लिए तैयार हैं। लेकिन कर्मचारी यूनियनों की क्या तैयारियां हैं? एक बहुत बड़ा सवाल है। क्या बिजली निजीकरण के खिलाफ उत्तर प्रदेश और अन्य राज्यों में जो लड़ाइयां लड़ी गयीं, उनसे सबक निकालते हुए दिल्ली आम बिजली कर्मचारी अपने अगुवाओं की पीठ में छुरा भोंकने से रोक पायेंगे?

चुनावी गोटी लाल करने का भाजपाई कुचक्र

(पृष्ठ 1 से आगे)

तिकड़में और छल-कपट लाजिमी तौर पर करने होते हैं।

भाजपाइयों का संकट यह है कि अंधाधुंध उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को लागू करने और लाठी-गोली से हर जन-विरोध को कुचलकर उन्होंने शासक वर्गों की नज़रों में अपने को योग्य तो सिद्ध किया है, लेकिन उनके लिए अब यह मुमकिन नहीं रह गया है कि 'स्वदेशी' के नारे के सहारे चुनाव वैतरणी पार कर सकें। आम जनता की ज़िन्दगी की परेशानियों में "पड़ोसी देश से ख़तरा" का अंधराष्ट्रवादी नारा भी विशेष प्रभावी होता नहीं दीख रहा है। दलित मध्य वर्ग की पतित सत्ताधर्मी पार्टी बसपा से तलाक के बाद दलितों में चुनावी जनाधार बना पाना भी मुमकिन नहीं रह गया है। और बात सिर्फ इतनी ही नहीं है। नई आर्थिक नीतियों की मार ग़रीब तबकों की कमर तोड़ रही है और गांव के ग़रीबों में बहुसंख्या दलित जातियों की है। भाजपाई शासन के दौरान सवर्ण प्रतिक्रियावाद और मध्य जातियों के कुलकों द्वारा दलितों के दमन-उत्पीड़न में लगातार बढ़ोत्तरी हुई है।

भारतीय जनता पार्टी का संकट यह है कि मुख्य धारा की एक आम पूंजीवादी पार्टी बनने की कोशिश में वह चाहकर भी अपनी "चाल, चेहरा और चरित्र" नहीं बदल सकती। सिर्फ कुछ मुखौटे बदल सकती है और उसकी भी सीमाएं अब सामने आ चुकी हैं। भारतीय जनता पार्टी ने आर.एस.एस. के जिन संगठनों और फासिस्ट प्रचार के बूते अपना चुनावी जनाधार तैयार किया है, उसे बदलना उसके बूते की बात नहीं। कोई भी फासिस्ट पार्टी अपने इतिहास और अपनी संरचना को इतनी आसानी से बदल नहीं सकती। और सच पूछें तो चुनावी तकाजों के अतिरिक्त भाजपाइयों की ऐसी कोई मंशा भी नहीं है।

तमिलनाडु, केरल, पश्चिम बंगाल, असम और पांडिचेरी विधानसभाओं के चुनाव निकट हैं और उनके कुछ ही महीनों बाद उत्तर प्रदेश विधानसभा के चुनाव होंगे जो भाजपा व अन्य बुर्जुआ पार्टियों के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण होंगे।

संघ परिवार और भाजपा का शुरुआती ऊहापोह यह था कि राम मंदिर कार्ड के इस्तेमाल से कहीं राजग के सहयोगी दल (अपनी-अपनी चुनावी छवि और जनाधार के मद्देनज़र) बिदक न जायें और केन्द्र सरकार को कोई खतरा न पैदा हो जाये। पर इस ऊहापोह से उबरने में दो कारणों से मदद मिली। एक तो यह कि भाजपा को, विशेषकर उत्तर प्रदेश को ध्यान में रखकर, अयोध्या (और फिर काशी-मथुरा) के मसले को हवा देने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं नज़र आया। और इन विधानसभा चुनावों में मिट्टी पलीद होने की स्थिति में, वैसे भी केन्द्र की सरकार का टिके रह पाना मुमकिन नहीं होगा। दूसरे, केन्द्र में राजग के अन्य घटक भी काफी बंधे हुए हैं और उनकी अपनी भी मजबूरी का तकाजा है कि वे कुछ दुलत्तियां भी बर्दाश्त करके गठबंधन में बने रहें। चुनाव से वे भी फिलहाल बचना चाहते हैं। तीसरे, **संघ परिवार के दसमुंहे प्रचारतंत्र का एक लाभ यह भी है कि वह पांच मुंहो से हिन्दू राष्ट्रवाद के नारे उछाल सकता है तो तीन मुंहों से धर्मनिरपेक्षता की दुहाई दे सकता है और दो मुंहों से कुछ दूसरी बातें कर सकता है।**

इन सभी पहलुओं पर सोचने के बाद, **जो भाजपा अभी छः माह पहले तक विहिप और बजरंग दल की आक्रामक मुहिमों से अपने को अलग दिखा रही थी उसके सबसे "धर्मनिरपेक्ष" मुंह से ये विचार फूटने लगे कि राम जन्मभूमि आंदोलन राष्ट्रीय भावनाओं का प्रकटीकरण है।** पीछे मुड़कर देखें तो इसकी पृष्ठभूमि काफी पहले से तैयार हो रही थी। **अमेरिका के आप्रवासी हिन्दूवादियों के आयोजन में प्रधानमंत्री द्वारा अपने स्वयंसेवक होने की घोषणा, संघ के जलसों-आयोजनों की तेज होती सरगर्मियां, ईसाई चर्चों-मिशनरियों से लेकर सिखों तक के खिलाफ आर.एस.एस. की मुहिम और सुदर्शन के चौंकाऊ-भड़काऊ बयानों को उसी प्रक्रिया की तैयारी के रूप में देखा जा सकता है जिसकी परिणति कुम्भ मेले में प्रस्तावित राम मंदिर मॉडल के प्रदर्शन और धर्मसंसद में मंदिर-निर्माण के लिए अल्टीमेटम देने तथा अदालती आदेशों की परवाह न करने की खुली घोषणा के रूप में सामने आई है।**

जैसी सम्भावना थी, मंदिर निर्माण की ठीक-ठीक तारीखों की घोषणा अभी टाल दी गई है। तबतक जनभावनाओं को भड़काने और उन्माद पैदा करने के कार्यक्रम चलाये जाते रहेंगे। खासकर उत्तर प्रदेश के विधानसभा चुनावों तक। इस बीच **यदि आंदोलन ने ज़ोर पकड़ लिया तो राम कार्ड की उपयोगिता फिर से सिद्ध हो जायेगी और तब भाजपा लोकसभा के मध्यावधि चुनावों के बारे में भी सोच सकती है।**

ग़ौर करें तो चुनावी राजनीति के केन्द्र में अयोध्या मुद्दे के आ जाने से कांग्रेस और अन्य संसदीय विपक्षी दलों को भी यह लाभ मिलेगा कि सारा ध्रुवीकरण इसी मसले के इर्द-गिर्द हो जायेगा और छंटनी-तालाबंदी, मंहगाई-बेरोज़गारी, निजीकरण और उदारीकरण के बुनियादी मसले दरकिनार हो जायेंगे। आखिरकार कांग्रेस ही तो इन नीतियों की शुरुआत करने वाली पार्टी है और तीसरे मोर्चे ने भी तो इन्हीं नीतियों को आगे बढ़ाया था! अत: **सभी दलों की एक भीतरी चाहत हैं कि चुनावी राजनीति के एजेण्डे के केन्द्र में आर्थिक नीतियों का मसला न हो। यही भारतीय पूंजीपति वर्ग भी चाहता है और साम्राज्यवादी भी। और भाजपा अपनी चुनावी विवशताओं से प्रेरित होकर इन सबके मन की मुराद भी पूरी कर रही है।**

हिन्दू कट्टरपंथी ताकतों का नेतृत्व बखूबी समझता है कि वह आज हिटलर की तरह "नस्ली सफाई" अभियान नहीं चला सकता। वह धर्मान्धता के जुनून का "नियंत्रित" चुनावी इस्तेमाल करते हुए साम्राज्यवादियों और देशी पूंजीपतियों के हितों की सेवा करना चाहता है। इस मूल उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह एक निरंकुश फासिस्ट सत्ता कायम करके मेहनतकश आम जनता के हर सम्भावित प्रतिरोध को कुचलने के लिए सन्नद्ध रहना चाहता है।

पर धर्मान्धता के फासिस्टी जुनून का खेल "नियंत्रित" रह पाना लगभग असम्भव होता है। यह जिन्न बोतल से बाहर निकलने के बाद फिर जल्दी भीतर नहीं जाता और पूंजीवादी संसदीय जनवाद के लिए भी संकट पैदा हो जाता है। पूंजीवादी सिद्धान्तकारों-सलाहकारों की चिन्ताओं का यह भी एक केन्द्र बिन्दु है।

संघ परिवारी फासिस्टी गुण्डों के सड़कों पर कायम आतंक-राज का कहर सबसे अधिक आम ग़रीब मेहनतकशों को भुगतना पड़ता है। पर इससे भी अधिक दूरगामी महत्व का एक प्रश्न यह है कि भाजपा यदि सत्ता में न भी रहे तो सत्ताधारियों के हाथों में थमी जंजीर से बंधे शिकारी कुत्ते की तरह यह हमेशा आम जनता के खिलाफ तैनात रहेगी। दूरगामी महत्व का दूसरा प्रश्न यह है कि **उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों पर अमल के लिए और जन-प्रतिरोधों को कुचलने के लिए एक फासिस्ट किस्म की राज्यसत्ता ज़रूरी है और भारतीय पूंजीवादी राज्यसत्ता के फासिस्टीकरण के काम को भाजपा अनुभवी ढंग से अंजाम दे रही है। भाजपा के अतिरिक्त कोई दूसरी बुर्जुआ पार्टी भी सत्ता में होगी तो वह भी नई आर्थिक नीतियों को लागू करती हुई निरंकुश राज्यतंत्र का बेहिचक इस्तेमाल करेगी।**

आज़ादी के बाद के वर्षों में जनसंघ जैसी फासिस्ट पार्टी का आधार शहरी व्यापारियों और धुर प्रतिक्रियावादी परम्परागत अभिजातों के बीच था। आज भाजपा का सामाजिक आधार भ्रष्ट नौकरशाहों और स्वतंत्रपेशा बुद्धिजीवियों के अतिरिक्त आम नौकरीपेशा लोगों में तथा गांवों के खुशहाल मध्यम तबकों और सवर्ण तथा (एक हद तक) मध्य जातियों के भूस्वामियों तक में विस्तारित हुआ है। **सफेदपोश मज़दूरों का एक हिस्सा भी नकली वामपंथियों का साथ छोड़कर फासिस्टों की ट्रेड यूनियनों में शामिल हुआ है। साथ ही, आम मध्यवर्गीय घरों के पीले, बीमार चेहरों वाले, बेरोज़गारी और सांस्कृतिक रुग्णता की मार झेल रहे नौजवानों का एक बड़ा हिस्सा, जो क्रांतिकारी प्रचार द्वारा मज़दूरों का बगलगीर बनाया जा सकता था, आज फासिस्टों के गिरोहों का सिपाही बन रहा है।**

बुर्जुआ "धर्मनिरपेक्ष" अखबारनवीसों की सतही चर्चाओं के बीच, इस सच्चाई की अनदेखी नहीं की जा सकती कि भारत में फासीवाद के मौजूदा उभार का रिश्ता मूलत: भारतीय पूंजीवाद के असाध्य ढांचागत आर्थिक संकट और पूंजीवादी जनवाद के लगातार जारी क्षरण की प्रक्रिया से है।

हम एक बार फिर जोर देकर कहना चाहते हैं कि मज़दूर आंदोलन के क्रान्तिकारीकरण के बिना, और आज की परिस्थितियों की सही समझ के आधार पर एक सशक्त मज़दूर-किसान मोर्चा (यानी शहरी और ग्रामीण सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा और पूंजी की मार से उजड़ते मध्यम किसानों की मध्यम पंक्तियों तक का संयुक्त मोर्चा) के बिना फासिस्ट चुनौती का कारगर प्रतिकार कदापि नहीं किया जा सकता। इसके बाद ही आम शहरी मध्य वर्ग के बड़े हिस्से को प्रभावी ढंग से **फासीवाद-विरोध का अंग बनाया जा सकता है।**

फासीवाद के विरुद्ध जन-प्रतिरोध को संगठित करने के लिए, मज़दूर आन्दोलन को अर्थवाद, सुधारवाद, ट्रेड यूनियनवाद की जकड़बन्दी से बाहर लाकर उसे क्रान्तिकारी जनदिशा देना होगा। तभी मज़दूर वर्ग फासीवाद के विरुद्ध लोहे की दीवार बनकर खड़ा होगा, ग़रीब एवं मध्यम किसान आबादी को साथ लेकर आक्रामक मोर्चेबंदी कर सकेगा और आम मध्य वर्ग के व्यापक हिस्से को भी अपनी ओर खींच सकेगा।

डाककर्मियों की चौदह दिनी देशव्यापी हड़ताल

(पृष्ठ 1 से आगे)

डाककर्मियों ने जुलाई 1998 में हड़ताल की। तत्कालीन संचार मंत्री सुषमा स्वराज के साथ एक समझौते के बाद इस हड़ताल को वापस ले लिया गया। उक्त समझौते के तहत एक विभागीय समिति गठित की गई जिसकी संस्तुतियों को सरकार को लागू करना था।

1999 में समिति की रिपोर्ट आ गयी जिसमें डाककर्मियों की सभी मांगों को जायज ठहराते हुए सरकार से उन्हें स्वीकार कर लेने का आग्रह किया गया था लेकिन उक्त समिति की सिफारिशों की फाइल विभिन्न मंत्रालयों में घूमती रही और कोई नतीजा नहीं निकला। बाध्य होकर डाक कर्मचारियों ने एक बार फिर मई 2000 से **अनिश्चितकालीन हड़ताल की नोटिस दी। संचार मंत्री राम विलास पासवान के आश्वासन पर हड़ताल फिर तीन महीने के लिए टाली गई। लेकिन कोई** नतीजा निर्धारित अवधि बीत जाने के बाद भी नहीं निकला। अन्ततोगत्वा 5 दिसम्बर से 6 लाख डाक कर्मचारी हड़ताल पर चले गये।

इस बार आक्रोशित डाककर्मियों का दबाव इतना प्रबल था कि अपनी-अपनी चौधराहट के लिए लड़ती रहने वाली और कर्मचारी एकता को तोड़ते रहने वाली तीनों यूनियनों-नेशनल फेडरेशन आफ पोस्टल इम्प्लाईज (संसदीय वामपंथियों से सम्बद्ध), फेडरेशन आफ नेशनल पोस्ट आफिसेज (कांग्रेस से सम्बद्ध) और भारतीय पोस्टल इम्प्लाइज फेडेरेशन (भाजपा से सम्बद्ध) ने एक साथ मिलकर हड़ताल का संयुक्त आह्वान किया। भाजपा से सम्बद्ध यूनियन ने इसके पहले इन्हीं मुद्दों पर हुई हड़तालों का पुरजोर विरोध किया था। पर इस बार वह सामने से विरोध का साहस नहीं कर सकी। इसके बजाय उसने इस बार **विभीषण** की भूमिका निभाने का काम किया और हड़ताल के दौरान सबसे पहले पीठ में छुरा भोंका। पर हड़ताल तोड़ने का दोष सिर्फ भाजपा और कांग्रेस से सम्बद्ध यूनियनों को ही नहीं दिया जासकता। नकली वामपंथी ट्रेड यूनियनवादियों की नीतियां और कारगुजारियां भी इसके लिए कम जिम्मेदार नहीं हैं जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे।

डाक कर्मचारियों की इस जबर्दस्त हड़ताल के पीछे के कारणों को समझने के लिए उनकी पूरी स्थिति से संक्षेप में वाकिफ हो लेना जरूरी है। डाक विभाग आज भी, पूंजीवादी अर्थतंत्र के संचालन के लिए अपरिहार्य सम्पूर्ण संचार तंत्र का मेरूदण्ड है। देश के जन-जन तक चिट्ठी-पत्री, मनीआर्डर और सैकड़ों किस्म की डाक सामग्री पहुंचाने के साथ ही डाक विभाग के ही द्वारा तमाम सरकारी विभागों और कारखानों के पेंशन-भत्तों का नियमित भुगतान होता है। रेलवे, टेलीकाम जैसे बड़े विभागों के कर्मचारियों के पेंशन का भुगतान भी डाकघरों द्वारा ही किया जाता है। नौकरियों के लिए आवेदन पत्रों की बिक्री, देशी-विदेशी पोस्टल आर्डर की बिक्री, भुगतान और अन्य तरह-तरह के रिलीफ वर्क भी डाक विभाग द्वारा होते हैं।

इसके अतिरिक्त, इस सच्चाई से शायद बहुत ही कम लोग वाकिफ होंगे कि डाक विभाग वित्तीय पूंजी के तंत्र का भी एक अहम अंग है। देश के किसी भी बैंक से डाक विभाग का बैंकिंग कार्य कई गुना अधिक बड़ा है। पूरे देश के डेढ़ लाख छोटे-बड़े डाकघरों में 11 करोड़ बचत बैंक के खाते हैं और उनमें 1,82,205 करोड़ रुपये जमा हैं। इसके अतिरिक्त बचत पत्रों की बिक्री से डाक विभाग प्रतिवर्ष 80,000 करोड़ रुपये इकट्ठा करता है। यह पूरी पूंजी देश के विकास के नाम पर वस्तुत: पूंजीवादी ढांचागत व अवरचनात्मक विकास कार्यों तथा सार्वजनिक उपक्रमों में निवेश की जाती है। इसके बिना पूंजीवादी मुनाफा तंत्र चल ही नहीं सकता है। बैंकों में आम तौर पर मध्य वर्ग और अमीर वर्ग पैसा जमा करता है जबकि डाकखाने में आमतौर पर गरीब आदमी। इस तरह डाक विभाग के जरिए ही गरीबों की बचत को हड़पकर पूंजीवादी व्यवस्था में उसका इस्तेमाल पूंजी निवेश के लिए किया जाता है। गरीबों से पैसा उगाहने में डाक विभाग की भूमिका की प्रचुर सम्भावनाओं को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने ''विकास के लिए डाक बचत'' नाम से एक विशेष प्रोजेक्ट लिया है जिसका उद्देश्य ही है बचत के नाम पर गरीब जनता को और अधिक निचोड़ना। 'महिला समृद्धि योजना' जैसी तमाम स्कीमें भी इसी मकसद से बनाई गई हैं। वैसे अभी भी डाक विभाग द्वारा एकत्र की जाने वाली

(पृष्ठ 10 पर जारी)

चीन में मेहनतकश जनता के संघर्ष: सड़कों पर बह रहा है पिघला गर्म लावा फिर से

क्या आने वाले दशकों में फिर से संभावित है बसन्त का बज्रनाद?

(अरविन्द सिंह)

सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान एक बार माओ त्से-तुड. ने कहा था कि यदि चीन में समाजवाद को पराजित करके पूंजीवादी पथगामी सत्तासीन हो भी जायें तो वे कभी भी चैन की सांस नहीं ले सकेंगे। समय सर्वहारा के उस महान युगद्रष्टा नेता की भविष्यवाणी को शत-प्रतिशत सच साबित कर रहा है।

माओ की मृत्यु के बाद देड. और देड.पंथियों ने चीन में बाज़ार-समाजवाद के नाम पर जिन पूंजीवादी नीतियों पर अंधाधुंध अमल किया है, उसके विनाशकारी परिणामों के खिलाफ छिटपुट होने वाले विरोध अब व्यापक जन-प्रतिरोध की शक्ल अख़्तियार कर चुके हैं। हालांकि पूरी दुनिया का पूंजीवादी मीडिया चीन की उच्च विकास दर का ढोल लगातार पीटता रहा है, पर अखबारों के ओने-कोने में छन-छनाकर आ जाने वाली ऐसी ख़बरों पर भी ध्यान बरबस जाता ही रहता है, जिनमें चीन की पार्टी और राज्यतन्त्र के नौकरशाहों के बेकाबू भ्रष्टाचार, नवधनिकों की विलासिता और बढ़ती वेश्यावृति क साथ ही बढ़ती बेरोजगारी, स्त्री-भ्रूण हत्या और अमीरी-ग़रीबी के बीच गहराती जा रही खाई का भी उल्लेख रहता है। इससे साफ हो जाता है कि चीनी अर्थतन्त्र की उच्च विकास दर किस कीमत पर हासिल और बरक़रार है।

यूं तो दुनिया का पूंजीवादी मीडिया चीन में जन-प्रतिरोधों की ख़बरों का पूरीतरह 'ब्लैकआउट' करता रहा है, पर अब यह रुझान इतनी प्रबल हो उठी है कि इसे छुपाना मुमकिन नहीं रह गया है। यही कारण है कि **'टाइम'** जैसी अमेरिकी पत्रिका को भी अब चीनी जनता के आन्दोलनों की ख़बरों को स्थान देने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है।

गत वर्ष जुलाई में 'टाइम' पत्रिका में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार, "देश भर में श्रमिकों के विरोध मशरूम की तरह बढ़ते-फैलते जा रहे हैं। पिछले दो हफ़्तों में ही 1000 मज़दूरों ने चेड.डू स्थित जनमुक्ति सेना के वर्दी कारख़ाने को बंद किये जाने की सम्भावनाओं को देखते हुए उसका घेराव किया और दस हज़ार शिक्षकों ने कम मेहनताने का विरोध करने के लिए बीजिड. जाकर प्रदर्शन करने की धमकी दी।" (टाइम, 31 जुलाई, 2000, पृ.21)

●

अमेरिका में रह रहे भारतीय पत्रकार बटुक वोरा ने चीन यात्रा से लौटने के बाद वहां जारी जन संघर्षों का एक ब्यौरा **'मेनस्ट्रीम'** साप्ताहिक पत्रिका (18 नवम्बर, 2000) में प्रस्तुत किया है। इस आलेख के तथ्यों को हम यहां संक्षेप में दे रहे हैं।

1995 में चीन के पचास शहरों में राजकीय, निजी और विदेशी उपक्रमों के खिलाफ हुए प्रदर्शनों में लगभग ग्यारह लाख श्रमिकों ने हिस्सा लिया। 1998 तक विरोध-प्रदर्शनों में भाग लेने वाले मज़दूरों की संख्या बढ़कर 36 लाख तक जा पहुंची थी। हालांकि पूरी संभावना इस बात की भी है कि यह आकलन वास्तविकता से काफी कम है ('इस्टर्न एक्सप्रेस', हांगकांग)। महत्वपूर्ण बात यह भी है कि मज़दूरों ने चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में काम करने वाली 'अखिल चीनी ट्रेड यूनियन संघ' (ए.सी.एफ.टी.यू.) को लगभग दरकिनार करते हुए, स्वत:स्फूर्त विस्फोट जैसी कार्रवाई के तौर पर इन विरोध-प्रदर्शनों में हिस्सा लिया। मज़दूरों के आक्रोश का मुख्य कारण था उनके बकाए मेहनताने का भुगतान नहीं किया जाना और रिटायर होने वाले मज़दूरों के पेंशनों का भुगतान रोकना। साथ ही, बड़े पैमाने पर मज़दूरों की छंटनी की जा रही थी और शेष की छुट्टियां रद्द की जा रही थीं तथा विभिन्न संयुक्त उपक्रमों में उनसे जबर्दस्ती घण्टों ओवरटाइम करवाया जा रहा था।

चीन में जबतक समाजवाद वास्तव में कायम था, तबतक मज़दूरों की ज़िन्दगी "पालने से कब्र तक" सुरक्षित थी और मज़दूरों के विरोध-प्रदर्शनों की कोई ख़बर तक नहीं थी। यदि उनके बीच कोई आन्दोलन जैसी स्थिति थी तो वह 'सांस्कृतिक क्रान्ति' के दौरान पूंजीवादी पथगामियों के गिरोह के विरुद्ध ही थी। अब यह वस्तुत: उस पार्टी की सत्ता के विरुद्ध केन्द्रित है, जो सर्वहारा की पार्टी होने का दावा करती हुई वस्तुत: मुट्ठी भर अभिजातों के वर्चस्व वाली नवपूंजीपतियों की पार्टी है। उल्लेखनीय है कि पूंजीवादी पुनर्स्थापना के लगभग दो दशकों के दौरान, राजकीय उपक्रमों की संख्या 2,40,000 से घटकर मात्र 40,000 रह गया है। यह है "बाज़ार समाजवाद" का नंगा "गुप्त रहस्य" या खुला खेल फर्रुखाबादी! सरकारी आंकड़ों के अनुसार, चीन के शहरी और देहाती इलाकों में कुल मिलाकर तेरह करोड़ मज़दूर बेकार हैं। यहां यह याद दिलाना ज़रूरी है कि लगभग साठ के दशक के मध्य तक, चीन से बेरोजगारी का पूरीतरह खात्मा हो चुका था और यह स्थिति 1976 में माओ के निधन तक न सिर्फ बनी रही थी, बल्कि चीनी जनता के जीवन स्तर में और समानता में लगातार, हर मायने में वृद्धि हुई थी। बुर्जुआ आंकड़ेबाज भी बीस वर्षों पहले इस सच्चाई को मानने को मजबूर थे। आज 'न्यू चाइना न्यूज़ एजेंसी' को भी मजबूरन इतना मानना पड़ रहा है कि बेरोज़गारों की तादाद वहां दस करोड़ से ऊपर जा पहुंची है। चीन का 'श्रम मंत्रालय स्वयं आज स्वीकार कर रहा है कि बेरोजगारी की दर 2.9 प्रतिशत से ज्यादा हो जाना एक ख़तरनाक संकेत है। चीन के ही कुछ अर्थशास्त्रियों ने कुछ वर्षों पूर्व यह आकलन प्रस्तुत किया था कि सन 2000 के अंत तक कुल श्रमशक्ति का 21 प्रतिशत बेरोज़गार हो जायेगा।

बढ़ती बेरोज़गारी, रोज़गार की अनिश्चितता, गुजारे के संकट और सरकारी उपक्रमों के प्रबंधकों एवं पार्टी तंत्र के नौकरशाहों के भ्रष्टाचार को श्रमिक-असंतोष के विस्फोट को फ़ौरी कारण माना जा रहा है। आमतौर पर, मज़दूरों को या तो न्यूनतम मज़दूरी से भी कम आमदनी हो रही है या फिर राजकीय उपक्रमों की बिक्री, बंदी या उनके दिवालिया हो जाने से कुछ समय के लिए आमदनी बिलकुल ठप्प हो जा रही है। फिलहाल चीन के लगभग 15 करोड़ बेरोज़गारों में से आधे को ही बेरोज़गारी भत्ता मिलता है और वह भी मामूली-सा। प्रबंधकों क भ्रष्टाचार का आलम यह है कि कई मामलों में उन्होंने राजकीय उपक्रमों की उन सम्पत्तियों को भी बेच खाया है जिनसे श्रमिकों को गुजारे के साधन मिलते थे। प्रबंधकों के भ्रष्टाचार के खिलाफ खौलते श्रमिकों द्वारा उनकी पिटाई की घटनाएं आज चीन में आम हो चुकी हैं। ए.सी. एफ.टी.यू. के आधिकारिक मुखपत्र 'वर्कर्स डेली' के अनुसार, 1998 में जनवरी से जुलाई तक सिर्फ लियाओनिड. प्रान्त में मज़दूरों द्वारा विभिन्न उपक्रमों के प्रबंधकों की पिटाई की 276 घटनाएं घटी थीं। इन प्रबंधकों ने अपने कारखाने की संपत्तियों को या तो हड़प लिया था या बर्बाद कर दिया था।

ए.सी.एफ.टी.यू. ने 1992 में चीन के मज़दूरों के बीच एक सर्वेक्षण किया था जिसका मक़सद यह पता लगाना था कि "सुधारों के प्रति मज़दूरों का नज़रिया क्या है? तब 43 फीसदी मज़दूरों ने कहा था कि यदि आर्थिक सुधार "पूरी व्यवस्था में सुधार" के अनुरूप हैं तो वे उनका समर्थन करेंगे। बत्तीस फीसदी मज़दूरों का कहना था कि वे तब तक इन सुधारों का समर्थन करेंगे जबतक उनसे होने वाला "आर्थिक नुकसान बर्दाश्त किया जा सके।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि मज़दूर तभी सड़कों पर उतरे जब स्थितियां असहनीय हो गईं। हुनान प्रांतीय ट्रेड यूनियन के मुताबिक, मज़दूरों की विरोध कार्रवाइयों में से 55.7 प्रतिशत का कारण था बकाया वेतन और पेंशन का भुगतान न होना। 37.7 प्रतिशत विरोध प्रदर्शन उपक्रमों के दिवालिया घोषित होने के खिलाफ हुए थे।

चीन के दस बड़े प्रांतों के एक सर्वेक्षण से पता चला था कि बकाये मज़दूरी की समस्या से ग्रस्त उपक्रमों की संख्या इन प्रांतों में 913 से 2720 के बीच थी। प्रभावित मज़दूरों की संख्या 1994 में सिचुआन प्रांत में 90,926 और हेइलौड.जियाड. में 7,87,093 थी। शानसी प्रान्त में ऐसे उपक्रमों की संख्या 131। और प्रभावित मज़दूरों की संख्या 1,62,411 थी।

'फाइनेंसियल टाइम्स' के अनुसार, अगस्त 1994 में लियाओनिड. प्रान्त में बकाये वेतन का भुगतान न होने के विरोध में 300 खनिकों ने प्रदर्शन किया। पुन: 1996 में उसी सवाल पर उसी जगह फिर से प्रदर्शन हुआ। सिचुआन प्रान्त में अक्टूबर 1997 में 1000 मज़दूरों ने चिकित्सा भत्ता और बकाये मज़दूरी का भुगतान रोके जाने के खिलाफ प्रदर्शन किया। आनशान शहर में 300 पेंशनयाफ्ता श्रमिकों ने 1998 में तीन महीनों तक पेंशन का भुगतान न होने के खिलाफ प्रदर्शन किया। प्रदर्शनकारियों का पुलिस के साथ संघर्ष भी हुआ। हुनान टेलीविजन कारखाने के मज़दूरों ने सितंबर 1998 में शेनजेन के उत्तरी चीन से जोड़ने वाले हाइवे सं. 107 को जाम कर दिया। सिचुआन प्रांत के कृषि मशीनरी कारखाने के 500 मज़दूरों ने प्रबंधकों के भ्रष्टाचार के खिलाफ विरोध प्रदर्शन किया। चीनी अखबारों में ही छपी खबरों के मुताबिक, कई हिंसक प्रदर्शन भी हुए। दिसंबर 1999 में येनान शहर में 1500 मज़दूरों ने कपड़े और हल्के औद्योगिक उत्पादनों के एक गोदाम को लूट लिया। ये मज़दूर एक स्थानीय कारखाने में काम करते थे और चार महीनों से उनकी तनख्वाह और पेंशन का भुगतान नहीं हुआ था।

●

चीन के नये पूंजीवादी शासकों के विरुद्ध जन-प्रतिरोध की लहर कोई नई परिघटना नहीं है। नये सत्ताधारियों द्वारा आर्थिक उदारीकरण की शुरुआत के साथ ही वहां जनता द्वारा प्रतिरोध की शुरुआत भी हो चुकी थी। इनका विस्तृत ब्योरा पांच वर्षों पहले 'फिलहाल' पत्रिका (31 अक्टूबर,1995) में प्रकाशित अपने लेख 'चीन में उदारीकरण और जन प्रतिरोध' में प्रख्यात अर्थशास्त्री दिलीप एस. स्वामी ने दिया था। सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री एजाज़ अहमद ने भी 'फ्रण्टलाइन' पत्रिका (3 मार्च, 2000) में प्रकाशित अपने एक लेख में बताया था कि चीन में मेहनतक़शों द्वारा गत दो वर्षों के भीतर 2,00,000 विरोध कार्रवाइयां हुई हैं।

लगभग छ:-सात वर्षों पहले, 'फानशेन', 'शेनफान' और 'द ग्रेट रिवर्सल इन चाइना' जैसी पुस्तकों के सुप्रसिद्ध लेखक विलियम हिण्टन ने भी चीन-प्रवास के अपने नये अनुभवों के आधार पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लिखे गये अपने कई लेखों में यह जानकारी दी थी कि चीन के विभिन्न हिस्सों में नये शासकों की नीतियों के विरुद्ध जन-विरोध की घटनाएं सामने आ रही थी।।

गौरतलब यह भी है कि पिछले दिनों चीन में हुए मज़दूरों के सभी विरोध-प्रदर्शन ग़ैरक़ानूनी थे। उदारतावाद का ढोल पीटते हुए 1982 में चीन में जो नया संविधान लागू हुआ था उसमें मज़दूरों के हड़ताल का अधिकार छीन लिया गया। मज़दूरों के लिए यह अनिवार्य बना दिया गया कि वे किसी भी तरह की विरोध कार्रवाई के लिए सुरक्षा ब्यूरो की इजाज़त लें। आमतौर पर इजाज़त मांगने वाली ऐसी अधिकांश अर्जियां खारिज कर दी जाती हैं। मज़दूरों के भारी दबाव के चलते, लाज बचाने के लिए, 1992 में ए.सी.एफ. टी.यू. ने हड़ताल का अधिकार फिर से बहाल करने की मांग की और एक नया ट्रेड यूनियन कानून बना भी, लेकिन मज़दूरों को विरोध कार्रवाइयों का अपना छिना हुआ अधिकार वापस नहीं मिला। आज के "उदार" चीन में मज़दूरों को विरोध करने का अधिकार नहीं है, फिर भी बिना इजाज़त के चौतरफा विरोध की कार्रवाइयां जारी हैं। जनता कहीं भी, कभी भी, अन्याय का विरोध करने के लिए हुक्मरानों की इजाज़त नहीं मांगती। और फिर चीन के मेहनतक़शों को तो माओ ने काफी पहले ही यह नारा दिया था: 'विद्रोह न्यायसंगत है।'

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का बुर्जुआ नेतृत्व यह भलीभांति समझ रहा है कि अपनी आर्थिक मांगों को लेकर आन्दोलन कर रहे चीन के मेहनतक़श धीरे-धीरे राजनीतिक संघर्ष की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं और प्रभावी राजनीतिक कार्रवाई में वे सक्षम भी हैं। अखबारों में प्रकाशित रपटों में उल्लिखित ये तथ्य ग़ौरतलब हैं कि आन्दोलनकारी कई जगहों पर ऐसे राजनीतिक नारे लगा रहे थे: "नये पैदा हुए बुर्जुआ वर्ग का नाश हो", "नये अभिजात तत्वों का नाश हो", "हमें पूंजीवादी नहीं समाजवाद चाहिए", "कारखाने के मालिक तमाम मज़दूर हैं" आदि।

जिनकी राजनीतिक याद्दाश्त मंद नहीं पड़ी है, उन्हें इन नारों में महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति (1966-76) के दौर के नारों की अनुगूंजें अवश्य ही सुनाई देंगी।

आज यह तो नहीं कहा जा सकता कि चीन में बहुत जल्दी ही समाजवादी क्रान्ति का कोई नया संस्करण संभावित है। कारण कि चीन के नये शासकों के पीछे देशी नव बुर्जुआओं के साथ ही साम्राज्यवाद की पूरी ताकत मुस्तैद खड़ी है। चीन की निरंकुश सामाजिक फासिस्ट सत्ता की जड़ता की शक्ति अभी काफी मजबूत है। दूसरी ओर, सर्वहारा क्रान्ति की नेतृत्वकारी ताकतें अभी कमजोर हैं और बिखरी हुई हैं। जन-विद्रोह और जन-उभार क्रान्ति के विज्ञान से लैस पार्टी के नेतृत्व के बगैर, अपने-आप क्रान्ति में नहीं बदल सकते। फिर भी, चीन के पुराने पार्टी कार्यकर्ता और किसान-मज़दूर सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौर के अनुभवों एवं शिक्षाओं को एकदम भुला चुके हों, यह असम्भव है। इसलिए, विश्व मज़दूर क्रान्ति के नये चक्र में चीनी मेहनतक़श भी लबों पर नये बुर्जुआ वर्ग के नाश का नारा लिये हुए अगली कतारों में होगा, इस सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। अगर कुछ वर्षों में नहीं, तो कम से कम आने वाले कुछ एक दशकों में तो अवश्य ही, फिर से गूंज सकता है बसन्त का बज्रनाद!

जनमुक्ति की अमर गाथाः चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा (भाग-दस)

नये-नये प्रयोग और समाजवाद के आगे बढ़ते कदम

1.1950 के दशक के मध्य में अपनी एक देहात-यात्रा के दौरान ट्रेन में नक्शे का अध्ययन करते हुए माओ त्से-तुङ.

2. गांसू में गेहूं की मंड़ाई, 1957.

3. शानसी में एक किसान आपसी सहायता टीम, 1956

1.

क्रान्ति के बाद चीन की नई लोक सत्ता के सामने गम्भीर चुनौतियां खड़ी थीं। सौ वर्षों तक विदेशी ताकतों ने देश को लूटा और निचोड़ा था। 1949 तक अर्द्धसामंती-अर्द्धऔपनिवेशिक चीन के उद्योग, वाणिज्य, विदेश-व्यापार, बैंकिंग, रेलवे, सड़क एवं हवाई परिवहन का अस्सी प्रतिशत साम्राज्यवादियों और उनके दलालों के हाथों में था। अधिकांश जनता अशिक्षित और अभावग्रस्त थी और गांवों में रहती थी। गृहयुद्ध ने बहुतेरे शहरों को तबाह कर डाला था। उद्योग बहुत कम थे। भुखमरी का आलम था। देश के सामने रास्ते सिर्फ दो थे - एक, मुक्तिदायी समाजवाद का रास्ता और दूसरा, उत्पीड़क पूंजीवाद का रास्ता। माओ ने पहला रास्ता चुना। पिछड़े हुए चीन में एक नई समाजवादी अर्थव्यवस्था का लक्ष्य निर्धारित किया गया जिसमें न शोषित-उत्पीड़ित हों न ही शोषक-उत्पीड़क और समाज के सर्वतोमुखी क्रान्तिकारीकरण की ताकत लोगों के हाथों में हो।

गांवों में भूस्वामियों को उखाड़ फेंकने के लिए किसानों को गोलबन्द किया गया। भूस्वामियों की भूसम्पत्ति ज़ब्त कर ली गई। उन्हें ग़रीब किसानों के बराबर भूमि आवंटित की गई और मेहनत व ईमानदारी की कमाई से जीने का हक़ दिया गया। भूमि-सुधार चलाने का अधिकार किसान संघों को दिया गया जिनका मुख्य आधार ग़रीब और भूमिहीन किसान थे। 1952 तक पूरे देश की आधी खेती लायक ज़मीन बांटी जा चुकी थी और 30 करोड गरीब और भूमिहीन किसानों को ज़मीन मिल चुकी थी।

2.

इतिहास में पहले कभी भी इतने बड़े पैमाने पर धनियों से ग़रीबों को सम्पत्ति नहीं हस्तांतरित हुई थी। ज़मीन की ज़ब्ती और "ज़मीन उसकी जो उसे जोते" के नारे पर अमल किसानों के उत्पीड़न के खात्मे की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। पर कम्युनिस्ट पार्टी यह बखूबी समझती थी कि किसान यदि अपने छोटे-छोटे खेतों को जोतने-बोने तक ही सीमित रह जायें तो शोषण के सम्बन्ध नये सिरे से क़ायम हो जायेंगे। माओ ने कहा कि ग़रीबी से निजात पाने और मुक्त होने के लिए किसानों के सामने एक ही रास्ता है और वह है - खेती का सहकारी आधार पर संगठन।

1951 में माओ ने देहातों का दौरा किया और ऐसे आपसी सहायता टीमों के गठन को प्रोत्साहित किया जिनमें किसान पशु, हल आदि कृषि उपकरणों की साझेदारी करते थे और एक-दूसरे के खेतों पर मिलकर काम करते थे। 1952 तक 40 प्रतिशत किसान इन सहायता टीमों में संगठित हो चुके थे। पर ये टीमें इतनी बड़ी और सक्षम नहीं थीं कि सूखे या बाढ़ की समस्या से जूझ सकें, तकनीकी सुधार ला सकें या जल-संरक्षण परियोजनाएं संगठित कर सकें। जब कुछ जागरूक किसानों ने ज़मीन का सामूहिकीकरण और बड़े सहकारी फार्मों के गठन की शुरुआत की तो माओ ने इसका खुलकर स्वागत किया और जबर्दस्त तरफ़दारी की।

3.

ल्यु शाओ-ची जैसे कुछ कठमुल्ले पार्टी नेताओं ने सहकारिता आन्दोलन का विरोध किया और पहले बड़े उद्योग विकसित करने पर बल दिया। ल्यु ने लोगों को ज़मीन बेचने का अधिकार देने जैसी पूंजीवादी नीतियों को बढ़ावा दिया। नतीज़तन, बहुतेरे ग़रीब किसानों ने भूमि सुधारों के दौरान जो ज़मीनें हासिल की थीं, वे धनी किसानों के हाथों में पहुंच गईं। माओ के विरोधियों ने किसानों को आदेश दिया कि वे सहकारी फार्म तोड़ दें। कुछ किसान फिर से निजी खेती करने भी लगे। लेकिन जनता आज़ादी और सत्ता का स्वाद चख चुकी थी। बहुतेरे किसानों ने ऐसे आदेशों का प्रतिरोध किया। 1955 में माओ ने इन विद्रोही किसानों का समर्थन किया और दूसरों से भी वैसा ही करने को कहा।

माओ ने सामूहिकीकरण आन्दोलन की अगुवाई के लिए जन मुक्ति सेना के सैनिकों को लामबन्द किया। फलतः जून 1956 तक नब्बे प्रतिशत किसान परिवार सहकारी इकाइयों में संगठित हो चुके थे। माओ कदम-ब-कदम आगे बढ़ते हुए चीन के सम्पूर्ण कृषि-उत्पादन का समाजवादी रूपान्तरण कर देना चाहते थे। इसका अर्थ था - ज़मीन और कृषि-उपकरणों एवं मवेशियों के सामूहिक स्वामित्व के स्तर को क्रमशः ऊपर उठाते जाना। आन्दोलन का नारा था: "ग़रीब किसानों पर भरोसा करो और उनका नियंत्रण क़ायम करो।" यह जनता को सत्ता सौंपने के सवाल से जुड़ा नारा था। जन समुदाय आपसी सहकार और सामूहिक जीवन एवं उत्पादन की सर्वथा नई पद्धति सीख रहा था और उसकी समाजवादी चेतना उन्नत होती जा रही थी।

मई, 1956 माओ के लिए एक कठिन समय था। पार्टी के भीतर उनकी क्रान्तिकारी लाइन का विरोध करने वाले सभी ओर फैले हुए थे और माओ को इन "पूंजीवादी पथगामियों" की असलियत उजागर करने की तरकीब निकालनी थी। इसी समय माओ ने याङत्सी नदी तैरकर पार की और इस प्रतीकात्मक घटना पर एक कविता लिखी। माओ ने बिम्बों का प्रयोग करते हुए यह विचार रखा कि धारा के विरुद्ध लड़ते हुए समाजवादी निर्माण की वर्तमान मंज़िल एक लम्बे संघर्ष का एक शुरुआती चरण मात्र है।

4.

क्रान्ति के प्रारम्भिक वर्षों में ही अधिकांश उद्योगों को राज्य ने अपने कब्ज़े में ले लिया। कारखानों में क्रान्तिकारी बदलाव आ गये। कुछ कारखानों में, चन्द मैनेजरों-सुपरवाइज़रों के बजाय सामूहिक कमेटियां कामों का संचालन करने लगीं। इन कमेटियों में तकनीशियन, मालिक, पार्टी सदस्य, सैनिक नेता और मज़दूर शामिल होते थे। कपड़ा मिलों में खासकर, औरतें ज़्यादा सक्रिय थीं। ये प्रबंध कमेटियां उत्पादन से लेकर व्यवस्था और मज़दूरों के कल्याण तक के लिए जवाबदेह थीं। ये उत्पादन के साथ ही राजनीतिक अभियानों में भी मज़दूरों को संगठित करती थीं।

1953 में चीन की पहली पंचवर्षीय योजना की शुरुआत हुई जो प्रबंधन की सोवियत संघ में लागू व्यवस्था पर

(पृष्ठ 8 पर जारी)

9. माओ, चू तेह और चाओ एन लाइ जनमुक्ति सेना की पहली खेलकूद प्रतियोगिता में, 1952.

5. शंघाई नं.1 स्टेट कॉटन मिल में मज़दूरों द्वारा लगाये गये बड़े चित्राक्षरों वाले राजनीतिक पोस्टर को देखते हुए माओ.

4. याङत्सी नदी तैरकर पार करने की प्रसिद्ध घटना के बाद माओ, 1956.

7. स्तालिन के साथ माओ

8. माओ अपने सबसे बड़े पुत्र माओ आनइङ के साथ (जो कोरियाई युद्ध में मारे गये)

6. "जनता के बीच के अन्तरविरोधों को हल करने के बारे में" नामक अपना प्रसिद्ध भाषण देते हुए माओ, फरवरी, 1957

जनमुक्ति की अमर गाथा: चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा (भाग-दस)

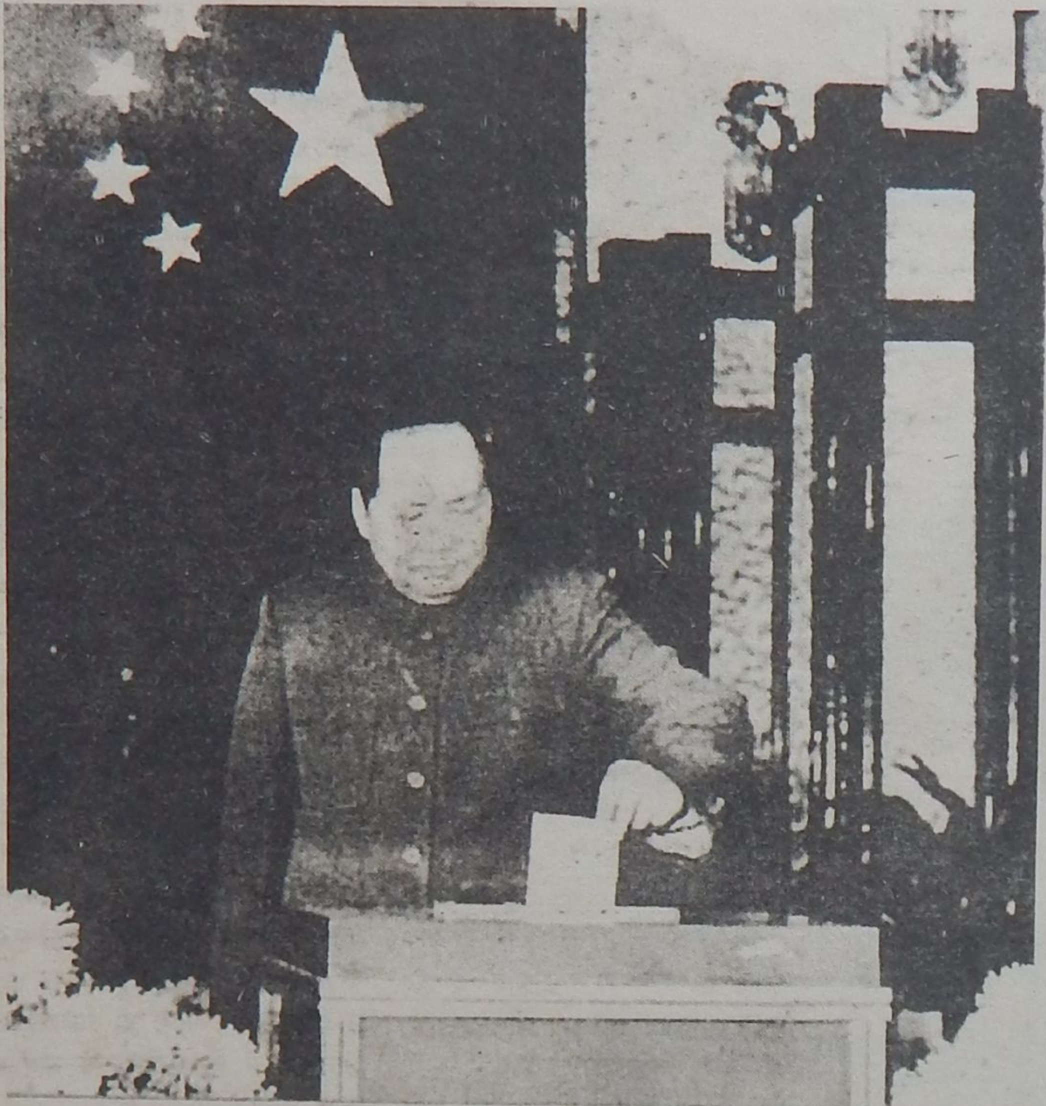

10. पेकिड. के शीतान नगर क्षेत्र की जन सरकार के प्रतिनिधियों के चुनाव में मतदान करते हुए माओ, 1953.

(पृष्ठ 7 से आगे)

आधारित थी। इस "एक सदस्यीय प्रबंध व्यवस्था" में कारखाने का नियंत्रण एक निदेशक के हाथों में होता था। एक सख़्त पदानुक्रम था। बोनस और पीस-रेट सहित भौतिक प्रोत्साहनों की व्यवस्था भी लागू थी। जल्दी ही माओ ने समझ लिया कि इस व्यवस्था के अन्तर्गत बहुतेरे कारखाने लगभग पूंजीवादी कम्पनियों की तरह चलाये जा रहे हैं।

5.

1957 तक शहरों में बेरोजगारी समाप्त हो चुकी थी और चीन की औद्योगिक अर्थव्यवस्था विकसित हो रही थी लेकिन जब पहली पंचवर्षीय योजना समाप्त हुई तो माओ का रुख उसके प्रति आलोचनात्मक था। उनका कहना था कि असमानता क़ायम है और बढ़ भी रही है। बौद्धिक श्रम करने वाले लोग शारीरिक श्रम करने वाली बहुसंख्यक जनता से बेहतर ज़िन्दगी जी रहे हैं। शहरों का जीवन गांवों से बेहतर है और यह अंतर बढ़ रहा है। और चीज़ें बहुत नौकरशाहाना ढंग से चल रही हैं। माओ ने समाजवादी विकास और नियोजन के एक वैकल्पिक रास्ते की खोज शुरु कर दी। उन्होंने इसी समय अपना प्रसिद्ध लेख लिखा: 'दस मुख्य संबंधों के बारे में।'

माओ का सवाल था कि उद्योगों, उत्पादन-वृद्धि और विकास का क्या फायदा, यदि उनसे जनता की सेवा न हो? आर्थिक विकास तो पूंजीवादी व्यवस्था में भी होता है, पर पूंजीवादी विकास कुछ लोगों के लिए बहुतों का शोषण करके तथा गांवों को निचोड़कर और धन को शहरों में केन्द्रित करके होता है। समाजवादी विकास का लक्ष्य विकास के साथ-साथ हर तरह की असमानता का खात्मा होना चाहिए।

12. हुनान में एक चरवाहे से बातचीत करते हुए माओ.

6.

माओ ने पूरे देश का दौरा करके किसानों, मज़दूरों और पार्टी सदस्यों से बातचीत की और हालात का जायज़ा लिया। उन्होंने लगातार सीखने, बदलते हालात के हिसाब से नीतियां बदलने और पार्टी-कतारों को लगातार शिक्षित करने पर जोर दिया। उन्होंने बल दिया कि पार्टी-सदस्यों की "निगरानी" का जनता को अधिकार है और क्रान्ति से विश्वासघात करने वाले नेताओं के खिलाफ बग़ावत का भी उसे अधिकार है।

चीन की आबादी में तब बुद्धिजीवियों का अनुपात एक प्रतिशत से भी कम था, पर समाज में वे प्रभावी थे और समाजवाद के निर्माण को उनकी जरूरत थी। उनकी सोच को बदलने और उसके क्रान्तिकारीकरण का रास्ता लंबा और कठिन था। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने बुद्धिजीवियों के प्रति "एकता और संघर्ष" की नीति अपनाई, उनके ग़लत विचारों की आलोचना की और जनता से जुड़कर उनके विचारों को बदलने के लिए लगातार, तरह-तरह के कदम उठाये। बहुतेरे बुद्धिजीवियों और छात्रों ने गांवों में और कारखानों में जाकर आम जनता के जीवन को निकट से देखा, पुराने समाज और चीनी क्रान्ति के इतिहास का अध्ययन किया तथा अपने विशेषाधिकारों को छोड़कर जनता और कम्युनिज़्म के लक्ष्य से जुड़ने को तत्पर हुए। फिर भी बहुतेरे ऐसे बुद्धिजीवी और पार्टी नेता थे जो विशेषाधिकारों के प्रति गुप्त आग्रह रखते थे। ऐसे तत्वों के विरुद्ध आगे लम्बे समय तक संघर्ष जारी रहा।

7.

1950 के पूरे दशक के दौरान, अमेरिकी साम्राज्यवाद आणविक हथियारों से चीन को धमकाता रहा तथा उसकी आर्थिक व सामरिक नाकेबन्दी करता रहा। पर माओ ने

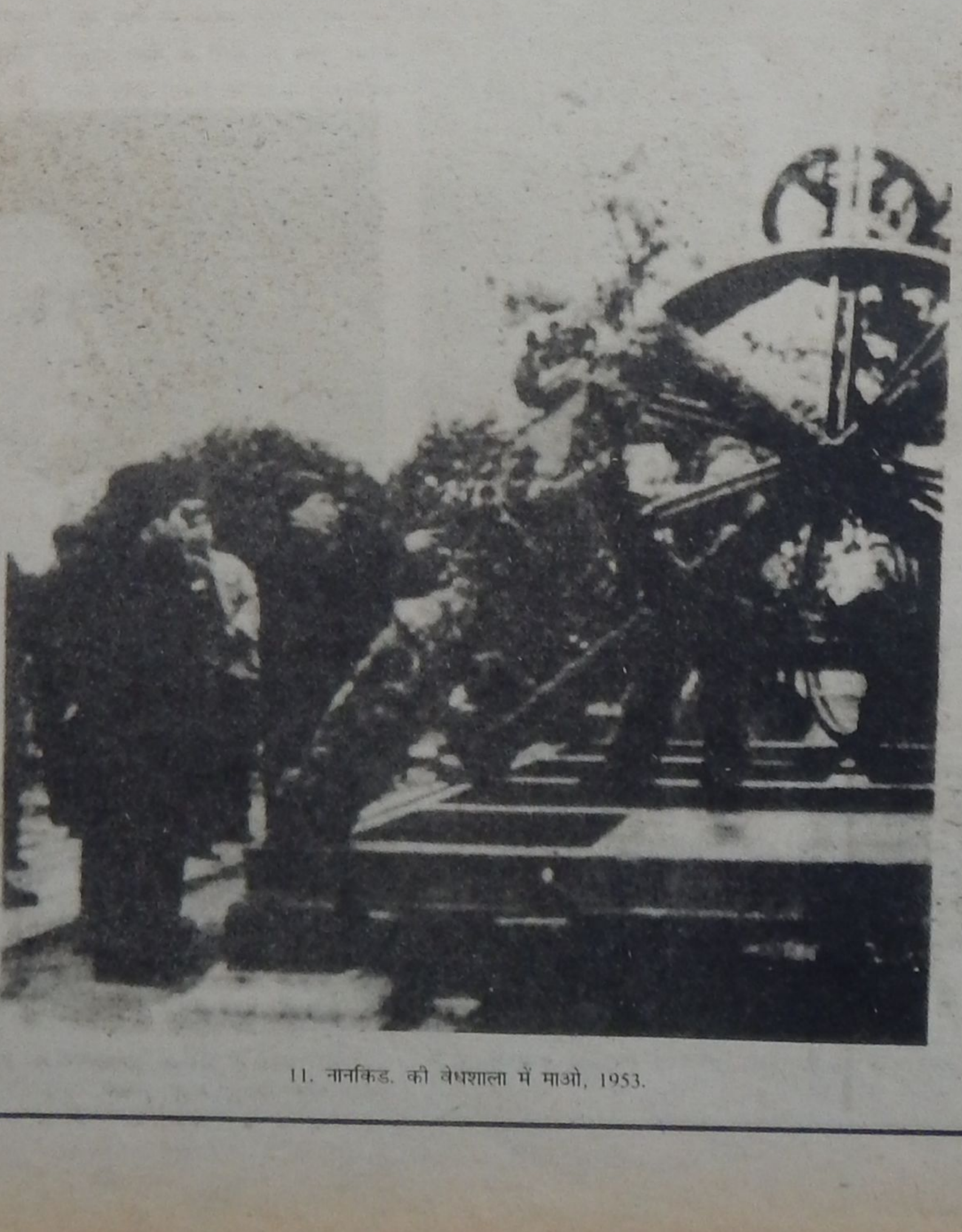

11. नानकिड. की वेधशाला में माओ, 1953.

(पृष्ठ 9 पर जारी)

जनमुक्ति की अमर गाथा: चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा (भाग-दस)

(पृष्ठ 8 से आगे)

अदम्य विश्वास के साथ कहा कि तमाम उन्नत हथियारों के बावजूद साम्राज्यवाद करोड़ों-करोड़ चीनी जनता और चीनी क्रान्ति को शिकस्त नहीं दे सकता।

1956 में चीन के नवजात समाजवादी राज्य को एक नये संकट के रूबरू होना पड़ा। सोवियत संघ में पार्टी व समाजवादी राज्य के भीतर से उभरा नया पूंजीपति वर्ग सत्तासीन हो गया। खुश्चेव के नेतृत्व में नये सत्ताधारी नकली कम्युनिज़्म की थीसिसें पेश करते हुए समाजवाद का रास्ता त्यागकर पूंजीवादी राह पर चल पड़े। उन्होंने वर्ग-संघर्ष और क्रान्ति की जगह शांतिपूर्ण बदलाव एवं चुनावी रास्ते की पैरोकारी शुरू कर दी। विश्व सर्वहारा क्रान्ति की जगह खुश्चेव ने साम्राज्यवाद के साथ शांतिपूर्ण सह अस्तित्व और प्रतियोगिता के नारे उछाले। विश्व युद्ध का हौवा खड़ा करके उसने राष्ट्रीय मुक्तियुद्धों की मदद भी बंद कर दी।

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के कंधों पर एक नई अंतरराष्ट्रीयतावादी जिम्मेदारी आ पड़ी। माओ ने सोवियत संघ की पार्टी के नेताओं को समझाने-बुझाने की असफल कोशिशों के बाद, उन्हें बेनक़ाब करने के लिए बहस की शुरुआत कर दी। खुश्चेवी नकली कम्युनिज़्म के खिलाफ पहला दस्तावेज 5 अप्रैल, 1956 को प्रकाशित हुआ: " सर्वहारा अधिनायकत्व के ऐतिहासिक अनुभव के बारे में।" इस दस्तावेज में मूल बात यह कही गई थी कि समाजवादी समाज में बहुतेरे अन्तरविरोध मौजूद रहते हैं, वर्ग संघर्ष जारी रहता है और सर्वहारा अधिनायकत्व की अपरिहार्यता बनी रहती है।

13. चीनी वैज्ञानिकों से बातचीत करते हुए माओ, 1956.

15. सोवियत पार्टी के साथ बहस-विवाद का दौर। मास्को में खुश्चेव के साथ माओ, 1957.

8.

चीन में ल्यू शाओ-ची जैसे धुर माओ-विरोधी नेता खुश्चेवी नकली कम्युनिज़्म के अंदर ही अंदर प्रशंसक थे और चीन में भी खुश्चेवी रास्ते की ही नकल करने को बेताब थे। 1957 में माओ ने एक ऐतिहासिक भाषण दिया जिसमें, अंतरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास में पहली बार उन्होंने एकदम स्पष्ट रूप से यह बताया कि समाजवादी स्वामित्व की बुनियादी उपलब्धि के बाद भी, बुर्जुआ वर्ग समाजवादी समाज में मौजूद रहता है, वर्ग संघर्ष न केवल जारी रहता है बल्कि अधिक जटिल और कभी-कभी अधिक उग्र भी हो जाता है। अन्ततोगत्वा विजय समाजवाद की होगी या पूंजीवाद की, यह प्रश्न एक लम्बे समय बाद ही फैसलाकुन तौर पर तय हो पाता है।

एक बेहद कठिन राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय परिस्थिति में, माओ ने संशोधनवादियों के विरुद्ध न सिर्फ पार्टी के भीतर मोर्चा खोल दिया पर वे एकदम अटल और निर्भीक बने रहे, क्योंकि चीन में समाजवाद को बचाने का यही एकमात्र रास्ता था। माओ कहते थे: " सत्य असत्य के विरुद्ध संघर्ष में विकसित होता है। मार्क्सवाद भी इसीतरह विकसित होता है। मार्क्सवाद पूंजीवादी और निम्न पूंजीवादी विचारधाराओं के विरुद्ध संघर्ष में विकसित होता है और सिर्फ संघर्ष के जरिए ही यह विकसित हो सकता है।"

अगले अंक में पढ़िए:
'महान अग्रवर्ती छलांग और उसके बाद'

14. सोवियत पार्टी के साथ बहस-विवाद का दौर। वोरोशिलोव की चीन यात्रा के दौरान, माओ उसके साथ, 1957

डाककर्मियों की चौदह दिनी देशव्यापी हड़ताल

(पृष्ठ 4 से आगे)

पूंजी बैंकों द्वारा इकट्ठा की जाने वाली कुल पूंजी से अधिक है।

डाक विभाग बैकिंग कार्य को वित्त मंत्रालय के एजेण्ट के रूप में करता है और इस पूरे काम के एवज में विभाग को मामूली कमीशन दिया जाता है। उस पर भी तुर्रा यह कि बेशुमार मुनाफे वाला यह काम डाककर्मियों को अतिरिक्त तौर पर करना पड़ता है। उन्हें इस अतिरिक्त श्रम का कोई लाभ नहीं मिलता।

बैकिंग कार्य के अतिरिक्त डाक विभाग बीमा का भी काम करता है। डाक जीवन बीमा के नाम से यह देश के कर्मचारी वर्ग से पूंजी इकट्ठा करने का काम करता है।

उपरोक्त तमाम कामों को पूरे देश के मात्र 6 लाख डाक कर्मचारी पूरा करते हैं। 1984 से ही इस विभाग में नई भर्ती पर रोक लगी हुई है। तब से आज तक काम बढ़कर लगभग तीन गुना हो चुका है, जबकि कर्मचारियों की संख्या बीस प्रतिशत कम हो चुकी है। हर कर्मचारी का काम कई गुना बढ़ चुका है जबकि उसे मिलने वाले वेतन का वास्तविक मूल्य पहले से लगातार कम होता जा रहा है। गौरतलब है कि 6 लाख डाककर्मियों में से 3 लाख से भी कम स्थायी कर्मचारी हैं और शेष 3 लाख से कुछ अधिाक अतिरिक्त विभागीय कर्मचारी हैं।

इन अतिरिक्त विभागीय कर्मचारियों को स्थाई कर्मचारियों जैसी कोई सुविधा या वेतन नहीं मिलता। वेतन के नाम पर इन्हें प्रतिमाह एक निश्चित रकम दी जाती है जो न्यूनतम मजदूरी से भी कम होती है। ये अतिरिक्त विभागीय कर्मचारी एक तरह से डाक विभाग के बंधुआ मजदूर हैं जो डाक विभाग में होने वाले सभी कार्यों को अकेले पूरा करते हैं। यूं तो स्थायी डाक कर्मचारियों का वेतन भी उनके कार्यों की तुलना में और उनसे होने वाले लाभ की तुलना में बहुत ही कम है, पर अतिरिक्त विभागीय कर्मचारियों के शोषण की तो कोई सीमा ही नहीं है।

पांचवें वेतन आयोग ने कर्मचारियों की सारी उम्मीदों पर पानी फेरते हुए वेतन विसंगति को और बढ़ाने के साथ ही काम करने की परिस्थितियों को कर्मचारियों के और अधिक प्रतिकूल कर दिया। अतिरिक्त विभागीय कर्मचारियों के नियमितीकरण की जगह ठेका मजदूरी प्रथा को वैधानिक बना दिया। कार्यभार कम करने के लिए नई भरती की जगह कर्मचारियों की सख्या में दस प्रतिशत और कटौती करने का प्रस्ताव किया तथा श्रम कानूनों और ट्रेड यूनियन नियमों में घोर मजदूर विरोधी बदलावों की सिफारिश की।

इस अंधेरगर्दी के खिलाफ व्यापक आक्रोश का परिणाम 1998 में डाक हड़ताल के रूप में सामने आया जिसे सरकार के टालू आश्वासन के बाद वापस ले लिया गया था। पुन: सरकार की वायदाखिलाफी से आजिज डाककर्मी इस बार आर-पार की लड़ाई के मूड में थे। हालांकि अपने ट्रेड यूनियन नेताओं के प्रति आश्वस्त न होने के कारण वे विजय के प्रति शुरू से ही कुछ आशंकित भी थे, पर 14 दिनों की हड़ताल में उन्होंने जिस एकजुटता का परिचय दिया, वह सरकारी नीतियों के प्रति उनके गहरे आक्रोश का द्योतक था।

हड़ताल के प्रति सरकार का रवैया कितना अंधेरगर्दी भरा था, इसका संकेत सिर्फ एक तथ्य से ही मिल जाता है। सरकार के पास डाक कर्मचारियों की मांगों के विरूद्ध एक भी तर्क नहीं था। राम विलास पासवान ने यह बयान दिया कि डाककर्मियों की सभी मांगें जायज हैं, पर वे उन्हें मान नहीं सकते। जाहिरा तौर पर, सरकार पर इसके लिए पूंजीपतियों और अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्यवादी एजेंसियों का जबर्दस्त दबाव था। यह अनायास ही नहीं था कि ऐन डाक हड़ताल के दौरान प्रधानमंत्री हड़तालियों के नेताओं से बातचीत के बजाय पूंजीपतियों की एक बैठक में घोषणा कर रहे थे कि सरकारी कार्यालयों में दस प्रतिशत स्टाफ कम किया जायेगा, यहां पर जल्दी ही वी. आर.एस. स्कीम लागू की जायेगी और आर्थिक सुधारों के तीसरे दौर की शुरूआत की जायेगी।

जाहिर हैकि सरकार हड़ताल जारी रहने की स्थिति में दमन और उत्पीड़न के किसी भी हद से गुजर जाने के लिए तैयार थी पर गद्दार ट्रेड यूनियन नौकरशाही ने ही उसके काम को 'ट्रोजेन हार्स' की भूमिका निभाकर और आसान बना दिया। सबसे पहले भाजपा सम्बद्ध यूनियन ने पीठ में छुरा भोंका और फिर घुटना टेकने में कांग्रेस और नकली वामपंथी यूनियनबाजों ने देर नहीं की। न्यायपालिका द्वारा हड़ताल खत्म कराने के निर्देश और सरकार द्वारा 'एस्मा' लागू करने की घोषणा के बाद नेतृत्व की स्थिति कुछ ऐसी ही थी कि घुटने के बल झुकने को कहने पर कोई साष्टांग दण्डवत करने लगे। सच्चे अर्थों में यह एक अभूतपूर्व हड़ताल की अभूतपूर्व पराजय थी।

भाजपा और कांग्रेस जैसी पार्टियों के दुमछल्ले ट्रेड यूनियनबाजों से तो कोई और अपेक्षा नहीं की जा सकती थी लेकिन संसदीय वामपंथ से जुड़े अर्थवादी, ट्रेड यूनियनवादियों ने भी एक बार फिर और पहले से अधिक नंगे और निर्णायक रूप में अपने को इसी पूंजीवादी व्यवस्था की दूसरी-तीसरे सुरक्षा पंक्ति प्रमाणित किया है। पूंजीवाद के विरूद्ध मजदूर आंदोलन की धार कुन्द करके वे हुक्मरानों की बहुमूल्य सेवा कर रहे हैं।

एक बार फिर यह सिद्ध हुआ है कि नकली वामपंथी ट्रेड यूनियन नेता अब सिर्फ ज्ञापन, वार्ता, रस्मी प्रदर्शनों और पूंजीवादी कानूनों की चौहद्दी के भीतर रहकर ही लड़ने के आदी हो चुके हैं। सरकारी कानूनों और न्यायपालिका के आदेशों से उनके कलेजे पीपल के पत्तेकी तरह कांपने लगते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि मजदूर वर्ग ने संघर्ष में यदि कानूनी चौहद्दियों का ख्याल किया होता तो पिछले डेढ़ शताब्दी के दौरान उसने एक भी जनतांत्रिक अधिकार या सुविधा नहीं हासिल की होती। आज उन्हें अधिकारों को एक -एक करके छीना जा रहा है और इसमें 'कानूनवादी' ट्रेड यूनियन दलालों की अहम भूमिका है।

●

डाक हड़ताल को कुचलने में न्यायपालिका की भूमिका भी गौरतलब है। यूं तो न्यायपालिका प्रच्छन्न रूप से इस व्यवस्था का हितपोषण पहले भी करती रही है लेकिन अब यह इस काम को सीधे-सीधे कर रही है। चाहे वह पर्यावरण सुरक्षा के नाम पर दिल्ली से 25 लाख मजदूरों को उजाड़ने का मामला हो या डाक हड़ताल को नाकामयाब बनाने का। दिल्ली हाईकोर्ट में सुनियोजित ढंग से एक जनहित याचिका दाखिल की गई जिसमें कहा गया कि ''डाक प्रणाली देश की अर्थव्यवस्था का आधार है। इसके बिना प्रगति और संचार व्यवस्था ठप पड़ जाती है। इस हड़ताल से गरीब और ग्रामीण तबके के साथ ही छात्र, बेरोजगार और व्यापारी बुरी तरह प्रभावित हुए हैं...व्यापारी वर्ग को हड़ताल के कारण व्यापार में भारी नुकसान उठाना पड़ रहा है।'' इसमें डाक कर्मचारियों के हितों या अतिरिक्त डाक कर्मचारियों की उजरती गुलाम जैसी स्थिति का कहीं कोई भी जिक्र नहीं था। इसी आधार पर न्यायालय ने आम जनता और व्यापारियों के हितों का ख्याल रखते हुए हड़ताल खत्म करवाने का निर्देश दे दिया। न तो न्यायालय ने इस औद्योगिक विवाद में कर्मचारियों का पक्ष जानने की कोशिश की, न ही मजदूरों के विधि सम्मत ढंग से हड़ताल पर जाने के बुनियादी अधिकार की रक्षा की। इसके विपरीत उसने सरकार को 'एस्मा' लगाकर हड़ताल को कुचल देने का रास्ता दे दिया। श्रम आयुक्त की भूमिका तो पहले से ही बेनकाब थी। इस मायने में वह और भी नंगी हो गई। श्रम आयुक्त इस औद्योगिक विवाद की सुनवाई कर रहे थे। एकाएक पूरी वार्ता को बीच में ही स्थगित करके उन्होंने हड़ताल को गैरकानूनी घोषित कर दिया। इस तरह विगत डाक हड़ताल ने इस अन्दरूनी सच्चाई को एकदम जगजाहिर कर दिया है कि न्यायपालिका की निष्पक्षता एक मिथक है, वह इसी राज्यतंत्र का एक पुर्जा है और यह कि श्रम न्यायालय का उद्देश्य श्रमिकों का नहीं बल्कि मालिकों और उनकी हुकूमत की चाकरी बजाना है।

●

डाक कर्मचारियों के लिए आज इस सच्चाई को समझना सबसे अधिक जरूरी है कि उनका उत्पीड़न, उनके साथ हो रहा अंधेरगर्दी भरा अन्याय और उनके हड़ताल का दमन पूरे देश के श्रमिक वर्ग और आम कर्मचारियों के साथ हो रहे बर्ताव का ही एक अंग है। निजीकरण-उदारीकरण-भूमण्डलीकरण के मौजूदा दौर में साम्राज्यवादी लुटेरे और उनके जूनियर पार्टनर भारत के देशी पूंजीपति तथा उनकी मैनेजिंग कमेटी के रूप में काम करने वाली सरकार मजदूरों के रन्ध्र-रन्ध्र से रक्त निचोड़कर अतिलाभ निचोड़ने पर आमादा है। दरअसल, विश्व पूंजीवाद के लाइलाज अन्दरूनी ढांचा संकट ने और असाध्यमंदी ने इस नये दौर की नीतियों को जन्म दिया है। किसी भी तरह से, किसी भी कीमत पर लाभ कमाने के लिए और फिर उस लाभ से निर्मित पूंजी को निवेश करके फिर लाभ कमाने की होड़ में देशी-विदेशी पूंजीपति आज मजदूरों के हर अधिकार को छीनते हुए, कम से कम मजदूरों से ज्यादा से ज्यादा काम लेकर अतिलाभ निचोड़ रहे हैं। तरह-तरह से भारी आबादी को सड़कों पर धकेलकर श्रमिकों की 'बार्गेनिंग पावर' को कम कर रहे हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के राजकीय पूंजीवाद उपक्रमों को निजीकरण के द्वारा निजी पूंजीवादी उपक्रमों में तब्दील कर रहे हैं। इसी प्रक्रिया को गति देते हुए विदेशी पूंजी की लूट के लिए देशी अर्थतंत्र का खुला चरागाह बना दिया गया है। इस भूमण्डलीकरण-मुहिम के विरूद्ध मजदूर वर्ग यदि एकजुट होकर मोर्चेबन्दी नहीं करेगा और अपने रोजगार के अधिकार, काम के घण्टे आदि बुनियादी राजनीतिक अधिकारों को मुद्दा बनाकर अपनी लड़ाई को क्रांतिकारी धार देने के बजाय यदि वह अलग-अलग बंटकर, अपने-अपने विभागों, सेक्टरों, कारखानों में महज वेतन-भत्ता-बोनस को लेकर ही लड़ता रहेगा तो हारते जाना और अपने पहले के संघर्षो से अर्जित अधिकारों को भी किश्तों में खोते जाना उसकी नियति बनी रहेगी। आज लड़ाई हमारे अस्तित्व की शर्त बन चुकी है और हमें सोचना यह है कि हम इस व्यवस्था के अस्तित्व के लिए एकजुट होकर चुनौती कैसे बन पायेंगे।

टुकड़ों-टुकड़ों में विभाजित होने के कारण, बुर्जुआ पार्टियों के दुमछल्ले ट्रेड यूनियन नेताओं के कारण और सबसे अधिक, नकली वामपंथी, अर्थवादी, सुधारवादी मज़दूर नेतृत्व की गद्दारी के कारण पिछले दस वर्षों के दौरान लगातार हड़तालों-संघर्षों के जारी रहने के बावजूद मज़दूर वर्ग पूंजीपतियों और उनकी सरकार के सामने कोई कारगर चुनौती नहीं प्रस्तुत कर सका है। बीमा विधेयक, बैंकों के निज़ीकरण, पब्लिक सेक्टर के उपक्रमों के शेयरों की बिक्री और निजीकरण, वी.आर.एस. जैसी तिकड़में और लगातार जारी छंटनी, श्रम क़ानूनों और औद्योगिक विवाद क़ानूनों में बदलाव करके मज़दूरों को एकबार फिर उन्नीसवीं सदी जैसी उजरती गुलामी में धकेला जाना, नई आयात नीति, मुक्त व्यापार क्षेत्रों की स्थापना – इन सभी घोर मज़दूर-विरोधी, जनविरोधी निर्णयों-कार्यों के सिलसिले को रोक पाना तो दूर, इनका कारगर प्रतिरोध कर पाने में मज़दूर आन्दोलन विफल रहा है। इस मायने में बुर्जआ ट्रेड यूनियन नेताओं से शिकायत नहीं हो सकती, उन्होंने तो वफ़ादारी से अपना काम किया है। शिकायत तो उन संसदीय वामपंथियों और उनके लग्गू-भग्गू ट्रेड यूनियनवादियों से ही हो सकती है, जिन्होंने समाजवाद और क्रान्ति की दुहाई देते हुए भी मेहनतक़शों को चुनावी चक्करों और दुअन्नी-चवन्नी की लड़ाई में उलझाये रखा, जिन्होंने आर्थिक संघर्षों को ही सबकुछ मानकर राजनीतिक संघर्षों को छोड़ दिया, जिन्होंने राज्यसत्ता कब्जा के प्रश्न को दरकिनार कर दिया और मज़दूर वर्ग के ऐतिहासिक मिशन को उसकी आंखों के सामने से ओझल कर दिया। मज़दूर आन्दोलन को बांटने और मज़दूरों को याचक भिखारी बना देने में इन ट्रेडयूनियन वामपंथी नेताओं ने भी बुर्जुआ ट्रेड यूनियनों के बराबर की भूमिका निभाई। इन्होंने मज़दूर आन्दोलन को भीतर से तोड़कर वहां पहुंचा दिया है कि जब भूमंण्डलीकरण के दौर में विश्व-पूंजी की सत्ता ने फैसलाकुन हमला बोला है तो मज़दूर वर्ग उनके आगे बिखरा और बेबस महसूस कर रहा है।

यह सोचने की बात है कि नई आर्थिक नीतियों के शिकार रेलवे, बैंक, डाकतार और पब्लिक सेक्टर के सभी मज़दूरों-कर्मचारियों को विगत दस वर्ष के दौरान इन मज़दूर नेताओं ने एकजुट होकर संघर्ष करने का कोई प्रोग्राम क्यों नहीं दिया? जबकि होना तो यह चाहिए था कि उदारीकरण-निजीकरण विरोधी संघर्ष में निजी क्षेत्र के मज़दूरों और तबाह हो रही मध्यम और ग़रीब किसान आबादी को भी साथ लिया जाना चाहिए था। बजाय इसके होता यह रहा कि अलग-अलग विभागों अलग-अलग मज़दूर-कर्मचारी सिर्फ वेतन-विसंगति दूर करने आदि जैसी आर्थिक मांगों पर लड़ते रहे और व्यापक वर्गीय हितों-अधिकारों के ऊपर घहराते खतरे की अनदेखी करते रहे। इस बार की डाक हड़ताल में भी केन्द्र में आर्थिक प्रश्नों को ही रखा गया था और इनके मूल में जो आर्थिक नीतियां थीं, उन्हें हमले का केन्द्र नहीं बनाया गया था। साथ ही, अन्य सेक्टरों के मज़दूरों-कर्मचारियों को साथ लेकर साझा संघर्ष की कोई कारगर पहल वास्तव में हुई ही नहीं, जबकि एक ही कहर सबपर बरपा हो रहा है।

डाक कर्मचारियों को इस बात को बख़ूबी समझना होगा कि देशी-विदेशी पूंजीपति और उनकी हुकूमत उनकी कम से कम संख्या से ज्यादा से ज्यादा काम लेकर अतिलाभ निचोड़ने, उनके अधिकारों को छीनते जाने और विरोध की हर आवाज़ को कुचलने का सिलसिला तबतक जारी रखेगी, जबतक कि व्यापक मज़दूर आबादी के साथ एकजुट होकर नई आर्थिक नीतियों के विरुद्ध प्रभावी संघर्ष शुरू नहीं किया जाता। पूरे अर्थतंत्र पर प्रभावी नियंत्रण व संचालन के लिए सत्ता डाक कर्मचारियों के हर प्रतिरोध को कुचलकर उन्हें उजरती गुलाम बना देना चाहती है। 6 लाख कुशल कर्मचारियों के श्रम के दोहन से लाभ निचोड़ने के साथ ही देशी-विदेशी सरमायेदारों की गृध्रदृष्टि डाक विभाग द्वारा लघु बचत व अन्य माध्यमों से इकट्ठा की जाने वाली लाखों-करोड़ों की रकम पर है। डाक महासचिव ने यूनियनों के साथ हुई एक बैठक में यह साफ-साफ बता दिया था कि पोस्ट-ऑफिस बचत बैंक का आर्थिक उदारीकरण और भूमण्डलीकरण की नीतियों से तालमेल करते हुए पुनर्गठन किया जायेगा। कारपोरेट ग्राहकों क लिए 35 किलो तक की डाक सामग्री बहुत सस्ती दरों पर उनके दरवाज़े तक पहुंचाई जायेगी। 'डाटा बेस पोस्ट' नाम से एक नई सेवा भी शुरू की जानी है जिसके लिए डाककर्मी घर-घर जाकर आंकड़ें इकट्ठा करेंगे जिसका इस्तेमाल पूंजीपति मालों की मार्केटिंग और विज्ञापन के लिए करेंगे। यानी पूंजीपति-व्यापारी अब डाककर्मियां को अपने मार्केटिंग एजेण्ट के रूप में इस्तेमाल करेंगे। डाक विभाग को अब पूरी तरह मुनाफे के लिए काम करने वाली संस्था के रूप में बदला जायेगा। इसके लिए यूरोपीय संघ, अमेरिका और बहुराष्ट्रीय कम्पनियां के साथ कई समझौतो भी हो चुके हैं।

इन परिवर्तनों की पूरी पृष्ठभूमि की अनदेखी करके डाककर्मी आज अपने आंशिक संघर्षों को भी नहीं जीत सकते जबकि जरूरत इस बात की है कि निजीकरण-उदारीकरण विरोधी संघर्ष के एक अंग के तौर पर, अपनी मांगों को लेकर लड़ा जाये और इस लड़ाई को पूंजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष की कड़ी बनाया जाये। पूंजीवादी हुकूमत आज अपने अंतिम विकल्प को लागू कर रही है। अत: फैसलाकुन लंबी लड़ाई का विकल्प चुनने के अतिरिक्त सर्वहारा वर्ग के पास भी अब दूसरा कोई रास्ता नहीं रह गया है।

● कहानी

बाज का गीत

■ मक्सिम गोर्की

सीमाहीन सागर तट-रेखा के निकट अलस भाव से छलछलाता और तट से दूर निश्चल, नींद में डूबा, नीली चांदनी में सराबोर था। क्षितिज के निकट दक्षिणी आकाश की मुलायम और रुपहली नीलिमा में विलीन होता हुआ वह मोठी नींद सो रहा था – रूई जैसे बादलों के पारदर्शी ताने-बाने को प्रतिबिम्बित करता हुआ जो उसकी ही भांति आकाश में निश्चल लटके थे – तारों के सुनहरे बेल-बूटों पर अपना आवरण डाले, लेकिन उन्हें छिपाये हुए नहीं। ऐसा लगता था, मानो आकाश सागर पर झुका पड़ रहा हो, मानो वह कान लगाकर यह सुनने को उत्सुक हो कि उसकी बेचैन लहरें, जो अलस भाव से तट को पखार रही थीं, फुसफुसाकर क्या कह रही हैं।

आंधी से झुके पेड़ों से आच्छादित पहाड़, अपनी खुरदरी कगारदार चोटियों से ऊपर के नीले शून्य को छू रहे थे, जहां दक्खिनी रात का सुहाना और दुलार-भरा अंधेरा अपने स्पर्श से उनके खुरदरे, कठोर कगारों को मुलायम बना रहा था।

पहाड़ गम्भीर चिन्तन में लीन थे। उनके काले साये उमड़ती हुई हरी लहरों पर अवरोधी आवरणों की भांति पड़ रहे थे, मानों वे ज्वार को रोकना चाहते हों। पानी की निरन्तर छलछलाहट, झागों की सिसकारियों और उन तमाम आवाजों को शांत करना चाहते हों जो अभी तक पहाड़ की चोटियों के पीछे छिपे चांद की रुपहली-नीली आभा की भांति समूचे दृश्य पट को प्लावित करने वाली रहस्यमयी निस्तब्धता का उल्लंघन कर रही थीं।

''अल्लाह हो अकबर !'' नादिर रहीम ओगली ने धीमे से आह भरते हुए कहा। वह क्रीमिया का रहने वाला एक वृद्ध गड़ेरिया था – लम्बा कद, सफेद बाल, दक्षिणी धूप में तपा, दुबला-पतला, समझदार बुजुर्ग।

हम रेत पर पड़े थे – साये में लिपटी और काई से ढकी एक भीमाकार, उदास और खिन्न चट्टान की बगल में जो अपने मूल पहाड़ से टूटकर अलग हो गई थी। उसके समुद्र वाले पहलू पर समुद्री सरकंडों और जल-पौधों की बन्दनवार थी जो उसे सागर तथा पहाड़ों के बीच रेत की संकरी पट्टी से जकड़े मालूम होती थी। हमारे अलाव की लपटें पहाड़ों वाले पहलू को आलोकित कर रही थीं और उनकी कांपती हुई लौ की परछाइयां उसकी प्राचीन सतह पर, जो गहरी दरारों से क्षत-विक्षत हो गई थीं, नाच रही थीं।

रहीम और मैं मछलियों का शोरबा पका रहे थे जिन्हें हमने अभी पकड़ा था और हम दोनों ऐसे मूड में थे जिसमें हर चीज स्पष्ट, अनुप्राणित और बोधगम्य मालूम होती हैं, जब हृदय बेहद हल्का और निर्मल होता है – और चिन्तन में डूबने के सिवा मन में और कोई इच्छा नहीं होती।

सागर तट पर छपछपा रहा था। लहरों की आवाज ऐसी प्यार-भरी थी मानो वे हमारे अलाव से अपने आपको गरमाने की याचना कर रही हों। लहरों के एकरस गुंजन में रह-रहकर एक अधिक ऊंचा और अधिक आह्लादपूर्ण स्वर सुनाई दे जाता – यह अधिक साहसी लहरों में से किसी एक का स्वर होता जो हमारे पांवों के अधिक निकट रेंग आती थी।

रहीम सागर की ओर मुंह किये पड़ा था। उसकी कोहनियां रेत में ध ंसी थीं, उसका सिर उसके हाथों पर टिका था और वह विचारों में डूबा दूर धुंधलके को ताक रहा था। उसकी भेड़ की खाल की टोपी खिसककर उसकी गुद्दी पर आ गयी थी और समुद्र की ताजा हवा झुर्रियों की महीन रेखाओं से ढके उसके ऊंचे मस्तक पर पंखा झल रही थी। उसके मुंह से दार्शनिकों उद्गार प्रकट हो रहे थे – इस बात की चिन्ता किये बिना कि मैं उन्हें सुन भी रहा हूं या नहीं। ऐसा लगता था जैसे वह समुद्र से बातें कर रहा हो।

''जो आदमी खुदा में अपना ईमान बनाये रखता है, उसे बहिश्त नसीब होती है। और वह, जो खुदा या पैगम्बर को याद नहीं करता ? शायद वह वहां है, इस झाग में...पानी की सतह पर वे रुपहले धब्बे शायद उसी के हों, कौन जाने!''

विस्तारहीन काला सागर अधिक उजला हो चला था और उसकी सतह पर लापरवाही से जहां-तहां बिखेर दिये गये चांदनी के धब्बे दिखाई दे रहे थे। चांद पहाड़ों की कगारदार झबरीली चोटियों के पीछे से बाहर खिसक आया था और तट पर, उस चट्टान पर, जिसकी बगल में हम लेटे हुए थे, और सागर पर, जो उससे मिलने के लिए हल्की उसांसें भर रहा था, उनींदा-सा अपनी आभा बिखेर रहा था।

''रहीम, कोई किस्सा सुनाओ,'' मैंने वृद्ध से कहा।

''किस लिए?'' अपने सिर को मेरी ओर मोड़े बिना ही उसने पूछा।

''यों ही ! तुम्हारे किस्से मुझे बहुत अच्छे लगते हैं।''

''मैं तुम्हें सब सुना चुका। और याद नहीं...'' वह चाहता था कि उसकी खुशामद की जाये और मैंने उसकी खुशामद की।

''अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हें एक गीत सुना सकता हूं,'' उसने राजी होते हुए कहा।

मैं खुशी से कोई पुराना गीत सुनना चाहता था और उसने मौलिक धुन को कायम रखते हुए एकरस स्वर में गीत सुनाना शुरू कर दिया।

1

''ऊंचे पहाड़ों पर एक सांप रेंग रहा था, एक सीलन भरे दर्रे में जाकर उसने कुंडली मारी और समुद्र की ओर देखने लगा।

''ऊंचे आसमान में सूरज चमक रहा था, पहाड़ों की गर्म सांस आसमान में उठ रही थी और नीचे लहरें चट्टानों से टकरा रही थीं...

''दर्रे के बीच से, अंधेरे और धुंध में लिपटी एक नदी तेजी से बह रही थी – समुद्र से मिलने की उतावली में राह के पत्थरों को उलटती-पलटती...

''झागों का ताज पहने, सफेद और शक्तिशाली, वह चट्टानों को काटती, गुस्से में उबलती-उफनती, गरज के साथ समुद्र में छलांग मार रही थी।

''अचानक उसी दर्रे में, जहां सांप कुंडली मारे पड़ा था, एक बाज, जिसके पंख खून से लथपथ थे और जिसके सीने में एक घाव था, आकाश से वहां आ गिरा...

''धरती से टकराते ही उसके मुंह से एक चीख निकली और वह हताशापूर्ण क्रोध में चट्टान पर छाती पटकने लगा. ..

''सांप डर गया, तेजी से रेंगता हुआ भागा, लेकिन शीघ्र ही समझ गया कि पक्षी पल-दो पल का मेहमान है।

''सो रेंगकर वह घायल पक्षी के पास लौटा और उसने उसके मुंह के पास फुंकार छोड़ी –

''मर रहे हो क्या ?

''हां मर रहा हूं!'' गहरी उसांस लेते हुए बाज ने जवाब दिया। 'खूब जीवन बिताया है मैंने!...बहुत सुख देखा है मैंने!...जमकर लड़ाइयां लड़ी हैं!... आकाश की ऊंचाइयां नापी हैं मैंने...तुम उसे कभी इतने निकट से नहीं देख सकोगे !...तुम बेचारे !'

''आकाश ? वह क्या है ? निरा शून्य...मैं वहां कैसे रेंग सकता हूं ? मैं यहां बहुत मजे में हूं...गरमाहट भी है और नमी भी!'

''इस प्रकार सांप ने आजाद पंछी को जवाब दिया और मन ही मन बाज की बेतुकी बात पर हंसा।

''और उसने अपने मन में सोचा – 'चाहे रेंगो, चाहे उड़ो, अन्त सब का एक ही है – सब को इसी धरती पर मरना है, धूल बनना है।'

''मगर निर्भीक बाज ने एकाएक पंख फड़फड़ाये और दर्रे पर नजर डाली।

''भूरी चट्टानों से पानी रिस रहा था और अंधेरे दर्रे में घुटन और सड़ांध थी।

''बाज ने अपनी समूची शक्ति बटोरी और तड़प तथा वेदना से चीख उठा –

'''काश, एक बार फिर आकाश में उड़ सकता!...दुश्मन को भींच लेता... अपने सीने के घावों के साथ...मेरे रक्त की धारा से उसका दम घुट जाता!... ओह, कितना सुख है संघर्ष में'!...

''सांप ने अब सोचा – 'अगर वह इतनी वेदना से चीख रहा है, तो आकाश में रहना वास्तव में ही इतना अच्छा होगा!'

''और उसने आजादी के प्रेमी बाज से कहा – 'रेंगकर चोटी के सिरे पर आ जाओ और लुढ़ककर नीचे गिरो। शायद तुम्हारे पंख अब भी काम दे जायें और तुम अपने अभ्यस्त आकाश में कुछ क्षण और जी लो।'

''बाज सिहरा, उसके मुंह से गर्व भरी हुंकार निकली और काई जमी चट्टान पर पंजों के बल फिसलते हुए वह कगार की ओर बढ़ा।

''कगार पर पहुंचकर उसने अपने पंख फैला दिये, गहरी सांस ली और आंखों से एक चमक-सी छोड़ता हुआ शून्य में कूद गया।

''और खुद भी पत्थर-सा बना बाज चट्टानों पर लुढ़कता हुआ तेजी से नीचे गिरने लगा, उसके पंख टूट रहे थे, रोयें बिखर रहे थे...

''नदी ने उसे लपक लिया, उसका रक्त धोकर झागों में उसे लपेटा और उसे दूर समुद्र में बहा ले गई।

''और समुद्र की लहरें, शोक से सिर धुनती, चट्टान की सतह से टकरा रही थीं...पक्षी की लाश समुद्र के व्यापक विस्तारों में ओझल हो गयी थी. ..

2

''कुंडली मारे सांप, बहुत देर तक दर्रे में पड़ा हुआ सोचता रहा – पक्षी की मौत के बारे में, आकाश के प्रति उसके प्रेम के बारे में।

''उसने उस विस्तार में आंखें जमा दीं जो निरन्तर सुख के सपने से आंखों को सहलाता है।

'''क्या देखा उसने – उस मृत बाज ने – इस शून्य में, इस अन्तहीन आकाश में ? क्यों उसके जैसे आकाश में उड़ान भरने के अपने प्रेम से दूसरों की आत्मा को परेशान करते हैं ? क्या पाते हैं वे आकाश में ? मैं भी तो, बेशक थोड़ा-सा उड़कर ही, यह जान सकता हूं।'

''उसने ऐसा सोचा और कर डाला। कसकर कुंडली मारी, हवा में उछला और सूरज की धूप में एक काली ध ारी-सी कौंध गई।

''जो धरती पर रेंगने के लिए जन्मे हैं, वे उड़ नहीं सकते!...इसे भूलकर सांप नीचे चट्टानों पर जा गिरा, लेकिन गिरकर मरा नहीं और हंसा –

'''सो यही है आकाश में उड़ने का आनन्द! नीचे गिरने में!...हास्यास्पद पक्षी! जिस धरती को वे नहीं जानते, उस पर ऊबकर आकाश में चढ़ते हैं और उसके स्पन्दित विस्तारों में खुशी खोजते हैं। लेकिन वहां तो केवल शून्य है। प्रकाश तो बहुत है, लेकिन वहां न तो खाने को कुछ है और न शरीर को सहारा देने के लिए ही कोई चीज। तब फिर इतना गर्व किसलिए ? धिक्कार-तिरस्कार क्यों ? दुनिया की नजरों से अपनी पागल आकांक्षाओं को छिपाने के लिए, जीवन के व्यापार में अपनी विफलता पर पर्दा डालने के लिए ही न ? हास्यास्पद पक्षी !...तुम्हारे शब्द मुझे फिर कभी धोखा नहीं दे सकते ! अब मुझे सारा भेद मालूम है ! मैंने आकाश को देख लिया है...उसमें उड़ लिया, मैंने उसको नाप लिया और गिरकर भी देख लिया, हालांकि मैं गिरकर मरा नहीं, उल्टे अपने में मेरा विश्वास अब और भी दृढ़ हो गया है। बेशक वे अपने भ्रमों में डूबे रहें, वे, जो धरती को प्यार नहीं करते। मैंने सत्य का पता लगा लिया है। पक्षियों की ललकार अब कभी मुझ पर असर नहीं करेगी। मैं ध रती से जन्मा हूं और धरती का ही हूं।'

''ऐसा कहकर, वह एक पत्थर पर गर्व से कुंडली मारकर जम गया।

''सागर, चौंधिया देने वाले प्रकाश का पुंज बना चमचमा रहा था और लहरें पूरे जोर-शोर से तट से टकरा रही थीं।

''उनकी सिंह जैसी गरज में गर्वीले पक्षी का गीत गूंज रहा था। चट्टानें कांप रही थीं समुद्र के आघातों से और आसमान कांप रहा था दिलेरी के गीत से –

'''साहस के उन्मादियों की हम गौरव-गाथा गाते हैं ! गाते हैं उनके यश का गीत !'

'''साहस का उन्माद-यही है जीवन का मूलमंत्र ओह, दिलेर बाज ! दुश्मन से लड़कर तूने रक्त बहाया...लेकिन यह समय आयेगा जब तेरा यह रक्त जीवन के अंधकार में चिंगारी बनकर चमकेगा और अनेक साहसी हृदयों को आजादी तथा प्रकाश के उन्माद से अनुप्राणित करेगा!'

'''बेशक तू मर गया!...लेकिन दिल के दिलेरों और बहादुरों के गीतों में तू सदा जीवित रहेगा, आजादी और प्रकाश के लिए संघर्ष की गर्वीली ललकार बनकर गूंजता रहेगा!'

'''हम साहस के उन्मादियों का गौरव-गान गाते हैं !''

...सागर के पारदर्शी विस्तार निस्तब्ध हैं, तट से छलछलाती लहरें धीमे स्वरों में गुनगुना रही हैं और दूर समुद्र के विस्तार को देखता हुआ मैं भी चुप हूं। पानी की सतह पर चांदनी के रुपहले धब्बे अब पहले से कहीं अधिक हो गये हैं...हमारी केतली ध ीमे से भुनभुना रही है।

एक लहर खिलवाड़ करती आगे बढ़ आई और मानो चुनौती का शोर मचाती हुई रहीम के सिर को छूने का प्रयत्न करने लगी।

''भाग यहां से ! क्या सिर पर चढ़ेगी ?'' हाथ हिलाकर उसे दूर करते हुए रहीम चिल्लाया और वह, मानो उसका कहना मानकर तुरंत लौट गई।

लहर को सजीव मानकर रहीम के इस तरह उसे झिड़कने में, मुझे हंसने या चौंक उठने वाली कोई बात नहीं मालूम हुई। हमारे चारों ओर की हर चीज असाधारण रूप से सजीव, कोमल और सुहावनी थी। समुद्र शांत था और उसकी शीतल सांसों में, जिन्हें वह दिन की तपन से अभी तक तप्त पहाड़ों की चोटियों की ओर प्रवाहित कर रहा था, संयत शक्ति निहित प्रतीत होती थी। आकाश की गहरी नीली पृष्ठभूमि पर सुनहरे बेल-बूटों के रूप में तारों ने कुछ ऐसा गम्भीर चित्र अंकित कर दिया था जो आत्मा को मंत्र-मुग्ध करता था और हृदय को किसी नये आत्मबोध की मधुर आशा से विचलित करता प्रतीत होता था।

हर चीज उनींदी थी, लेकिन जागरूकता की गहरी चेतना अपने हृदय में सहेजे, मानो अगले ही क्षण वे सभी नींद की अपनी चादर उतारकर अवर्णनीय मधुर स्वर में समवेत गान शुरू कर देंगी। उनका यह समवेत गान जीवन के रहस्यों को प्रकट करेगा, उन्हें मस्तिष्क को समझायेगा, फिर उसे छलावे की अग्नि-शिखा की भांति ठंडा कर देगा और आत्मा को गहरे नीले विस्तारों में उड़ा ले जायेगा, जहां तारों के कोमल बेल-बूटे भी आत्मबोध का दिव्य गीत गाते होंगे...

(1895)

संसदीय वामपंथियों का एक और दोगलापन

स्वास्थ्य का निजीकरण और निजीकरण की मुख़ालफत

(मुकुल श्रीवास्तव)

एक तरफ उदारीकरण-निजीकरण के विरोध का ढकोसला, हड़ताल-बन्द-संसदमार्च जैसी कार्रवाइयों से "जुझारूपन" बरकरार रखने की कोशिश और दूसरी तरफ अपने शासनकाल में उन्हीं नीतियों को तेजी से लागू करने वाले संसदीय वामपंथियों की दोगली नीतियां खुलकर सामने आने लगी हैं। निजीकरण लागू करने की मुहिम के तहत जहां पश्चिम बंगाल में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (सी.पी.एम.) के नेतृत्व वाली वामपंथी सरकार ने स्वास्थ्य विभाग के पूर्णतः निजीकरण का फैसला लिया है, वहीं सी.पी.एम. सहित चुनावी वामपंथियों से ही जुड़ी ट्रेड यूनियन महासंघों के आह्वान पर 10 जनवरी को निजीकरण के खिलाफ पश्चिम बंगाल सहित पूरे देश में राज्यकर्मियों के हड़ताल का आयोजन हुआ।

पश्चिम बंगाल की "वामपंथी" सरकार ने अपने निजीकरण मुहिम के तहत जनता की सबसे बुनियादी सेवा – चिकित्सा-स्वास्थ्य पर हमला बोलकर इसे मुनाफाखोरों के हवाले करनेका निर्णय लिया है। इस निजोकरण मुहिम के तहत अस्पताल चलाने की लगभग पूरी जिम्मेदारी निजी एजेंसियों को सौंपा जाएगा। राज्य सरकार ने डाक्टरों और नर्सों की नई नियुक्ति पर रोक लगा दी है और सरकारी अस्पतालों में इन्हें अनुबन्ध के आधार पर (ठेके पर) रखने का सिलसिला शुरू हो चुका है। प्रयोग के तौर पर कलकत्ता में शुरू हुए इस अभियान के तहत कनिष्ठ स्तर के कर्मचारियों की आपूर्ति के लिए निजी एजेंसियों से अनुबन्ध किया जायेगा। सरकार कचरा ढोने और इसे निपटाने तथा सेप्टिक टैंक के रखरखाव सहित छह विभागों के निजीकरण पर भी विचार कर रही है। वार्डों के रखरखाव की जिम्मेदारी भी निजी एजेंसियों को सौंपी जाएगी।

कलकत्ता मेडिकल कॉलेज एण्ड हास्पिटल, एस.एस.के.एम. हास्पिटल और नेशनल मेडिकल कॉलेज एण्ड हास्पिटल को शुरुआती दौर में निजीकरण की प्रयोगस्थली बनाई गई है। सरकार के अनुसार निजी एजेंसियों का कामकाज संतोषजनक पाये जाने के बाद इन एजेंसियों को बड़े पैमाने पर अस्पताल चलाने की जिम्मेदारी सौंपी जायेगी। यानी जनता का इलाज पूरी तरह से मुनाफाखोरों के रहमोकरम पर होगा।

आज पूरे मुल्क में तो आम जन-विरोधी नीतियों को जारी रखने, निजीकरण-छंटनी-तालाबन्दी की प्रक्रिया को तेजी से लागू करने, शिक्षा-चिकित्सा जैसी थोड़ी बहुत मिली बुनियादी सहूलियतों तक को छीनने का पूरा दौर चल ही रहा है। सभी चुनावी पार्टियों के चेहरे से "मानवीय" नकाब पूरी तरह तार-तार हो ही चुके हैं तो फिर चुनावी नौका से वैतरणी पार करने वाले वामपंथियों की "मानवीयता" भला कब तक बची रहती! निजीकरण विरोध से वे क्रान्ति की जितनी छौंक-बघार कर लें, उनकी "जनपक्षधरता" के रामनामी दुपट्टे को तार-तार होना ही है। तभी तो देशी-विदेशी पूंजीपतियों की हित सेवा में लगे ये "वामपंथी" दवा-इलाज तक को मुनाफाखोरी का धंधा बनाने से नहीं हिचके।

जहां तक निजीकरण की मुख़ालफत और तथाकथित हड़तालों का प्रश्न है, तो अपना "लालपन" बरकरार रखने के लिये कुछ गीदड़भभकी देना, आन्दोलनों का अनुष्ठान और कुछ हवाई गोले दागना इनकी मजबूरी बन चुकी है।

एक बार फिर यह साबित हो गया कि भाकपा, माकपा जैसी नकली वामपंथी चुनावी पार्टियों के विरोध की सारी कार्रवाइयां इस व्यवस्था की चौहद्दी के भीतर कुछ रस्मी कवायदों व अनुष्ठानों से आगे नहीं जा सकती। पिछले दस वर्षों के भीतर नई आर्थिक नीति के विरुद्ध लगातार हड़तालों व सघर्षों के जारी रहने के बावजूद ये पूंजीपतियों व सरकार के सामने कोई चुनौती नहीं प्रस्तुत कर सके। बैंक, बीमा, डाक, सार्वजनिक क्षेत्र से लगायत निजी क्षेत्रों तक में लागू घोर मज़दूर विरोधी नीतियों को रोक पाना तो दूर ये कारगर विरोधा तक नहीं कर पाये हैं। सोचने की बात यह है कि नई आर्थिक नीतियों का कहर झेल रहे बीमा, बैंक, डाक, दूरसंचार, बिजली विभाग के कर्मचारियों से लगायत दिल्ली में प्रदूषण के नाम पर उजाड़ें जा रहे आन्दोलित मज़दूरों की एकताबद्ध संघर्ष का कोई कार्यक्रम इन्होंने क्यों नहीं दिया जबकि सभी जगहों पर सीटू-एटक से सम्बद्ध यूनियनें थी।

दरअसल इनका दोगला चरित्र पूरी तरह उजागर हो चुका है कि नकली लाल झण्डा उड़ाने वाली इन वामपंथी पार्टियों व अन्य बुर्जुआ चुनावी पार्टियों में कोई भेद नहीं रह गया है। इनके नेता संसद में नकली विपक्ष की भूमिका निभाते हुए तथा ट्रेड यूनियन मेंचों से मज़दूरों में अपना जनाधार व वोट बैंक बनाये रखने के लिए निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों को विरोध करते हैं। लेकिन जहां इनकी सत्ता होती है वहां इन नीतियों को लागू करने के लिए ये किसी भी हद को पार कर सकते हैं।

अब पूरी तरह झुण्ड में शामिल हो चुके संशोधनवादी वामपंथी और सामाजिक जनवादी पार्टियों के नेता संसदीय विपक्ष की सीटों पर बैठकर या ट्रेडयूनियन के मंचों से मज़दूरों में अपना जनाधार और वोट बैंक बनाये रखने के लिये तो निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों का विरोध करते हैं, लेकिन जब सत्ता में होते हैं तो वे इन्हीं नीतियों को लागू करने के लिए किसी भी हद तक उतर सकते हैं, जिसे वे अपनी "बाध्यता" के भ्रमजाल से ढकने की नापाक कोशिशें करते हैं।

आज के दौर की विडम्बना यह है कि भूमण्डलीकरण के बारे में "और कोई विकल्प नहीं" की नीति अपनाने के बाद चुनावी वामपंथी दल पूंजीवादी व्यवस्था की "दूसरी सुरक्षा पंक्ति" की भूमिका भी कारगर ढंग से नहीं निभा पा रहे हैं। कारण यह है कि "कल्याणकारी राज्य" के जो कीन्सियाई नुस्खे और राजकीय इजारेदार पूंजीवाद (पब्लिक सेक्टर) का जो ढांचा चुनावी वामपंथियों को अपने नकली समाजवाद का मॉडल दिखाने के अवसर मुहैया कराते थे, वे आज विश्व पूंजीवाद की अपने बाध्यताकारी आन्तरिक दबावों और ज़रुरतों से टूट रहे हैं। पूंजी और श्रम एकदम आमने-सामने खड़े हैं। पूंजी और श्रम की राजनीति भी आमने-सामने खड़ी है। वामपंथी मुखौटों और भ्रमजालों के ज्यादा दिनों तक चल पाने की अब गुंजाइश ही नहीं रह गई है।

यह बात अब एकदम साफ हो चुकी है कि उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों का विरोध सिर्फ क्रान्तिकारी परिप्रेक्ष्य के साथ ही किया जा सकता है, क्योंकि इनके विकल्प की बात करना पूंजीवादी व्यवस्था के विकल्प की बात करना है।

अब विश्व-बैंक तय करेगा कर्मचारियों की कार्य-संस्कृति!

सरकारी कर्मचारियों का सड़कों पर धकेलने का अभियान और तेज

विश्व-बैंक से लेकर पूंजीपतियों की संस्थाएं तक देश-प्रदेश की सरकारों को दिशा-निर्देश तो देती ही रही हैं। अब विश्व बैंक ने उत्तर प्रदेश सरकार से राज्य कर्मचारियों को अकर्मण्य बताते हुए उनके कार्यो का ब्योरा मांगा है। विश्व बैंक की मांग पर प्रदेश सरकार कर्मचारियों के कार्यो पर एक रिपोर्ट तैयार कर रही है, ताकि वह कर्मचारियों के लिये एक "कार्य-संस्कृति" तय कर सके। उधर नवगठित झारखण्ड राज्य के लिये पूंजीपतियों की एक प्रमुख संस्था सी.आई.आई. ने "कार्ययोजना" तैयार की है।

पूंजीपतियों की एक अन्य प्रमुख संस्था 'भारतीय वाणिज्य व उद्योग मण्डल' (फिक्की) की सालाना बैठक में प्रधानमंत्री ने कर्मचारियों की संख्या में 10 फीसदी की कमी करने और 'स्वैच्छिक सेवा योजना' लागू करने का आश्वासन दे दिया है। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने शिक्षित नौजवानों को सरकारी नौकरी तलाशने की जगह निजी क्षेत्र में कार्य करने अथवा अपना व्यवसाय करने की प्रेरणा दी है। इसके साथ ही वाजपेयी ने बिजली, दूरसंचार और रेलवे क्षेत्र में भी "सुधार" कार्यक्रम तेज करने का पूंजीपतियों को आश्वासन दे डाला है।

विश्व बैंक और पूंजीपतियों के निर्देश पर उत्तर प्रदेश सरकार ने राज्य कर्मचारियों की छंटनी की रफ्तार तेज कर दी है। प्रदेश में सात हजार पद पहले ही समाप्त किये जा चुके हैं। अब आठ हज़ार पद और समाप्त करने की तैयारी हो चुकी है। राज्य में आगामी पांच वर्षों में कर्मचारियों की कुल संख्या को आधी करने की योजना है।

इससे पूर्व, प्रदेश में 90 हजार कर्मचारियों को पंचायती राज से जोड़कर मृत संवर्ग (यानी अवकाश प्राप्ति के साथ ही पद भी समाप्त) घोषित किया जा चुका है। सिंचाई विभाग के 80 हजार कर्मी अतिरिक्त घोषित हो चुके हैं और सार्वजनिक निर्माण विभाग (पी.डब्ल्यू.डी.) का पुनर्गठन करके "फालतू" कर्मचारियों को बाहर करने का फरमान आने ही वाला है। प्रदेश में 1997 से नई भर्तियों पर रोक है और प्रतिवर्ष 2 से 3 प्रतिशत कर्मचारी कार्यमुक्त हो रहे हैं। "घाटे" वाले सार्वजनिक उपक्रम या तो बन्द हो रहे हैं या फिर निजी हाथों में सौंपे जा रहे हैं।

केन्द्र सरकार ने आयकर विभाग के पुनर्गठन के तहत 2,752 पद समाप्त करने का निर्णय ले लिया है। इससे पूर्व सार्वजनिक बैंकों में एक लाख सतहत्तर हजार चार सौ पांच कर्मचारी अतिरिक्त घोषित किये जा चुके हैं। जिस रेलवे में 18 लाख कर्मचारी काम करते थे, आज वहां उनकी संख्या 13 लाख तक पहुंच चुकी है और पांचवे वेतन आयोग के अनुसार इसे 9 लाख तक पहुंचना है।

इधर नवगठित उत्तरांचल राज्य के नये कर्णधारों ने भी बेरोजगारों को ठेंगा दिखा दिया है। यहां भाजपा सरकार ने नवनिर्मित सचिवालय में सुरक्षा, बागवानी, सफाई, टेलीफोन आदि विभिन्न कार्यों को ठेके पर दे दिया है। सरकार के लघु उद्योग मंत्री ने विभाग में "अतिरिक्त" कर्मी का रोना रोते हुए भर्ती पर रोक लगा दी है। यहां सरकार ने शिक्षा क्षेत्र में भी ठेकेदारी प्रथा शुरू करने का ऐलान किया है। सरकार ने 'बेसिक शिक्षा परिषद' खत्म करने की घोषणा के साथ पंचायती राज के तहत ठेके पर प्राथमिक शिक्षा में "शिक्षा मित्र" और माध्यमिक में "शिक्षा बन्धु" रखने की घोषणा की है। इसके साथ ही बी.टी.सी. को "सहायक अध्यापक" का दर्जा मिलेगा।

बीमा के निजीकरण, बैंकों में सरकारी भागीदारी 51 प्रतिशत से घटाकर 33 प्रतिशत करने, दूरसंचार को निजी क्षेत्र में सौंपने, बिजली को देशी-विदेशी निजी कम्पनियों की सुपुर्दगी में देने की तैयारी के साथ ही सरकार अब पेंशन और भविष्य निधि के भी निजीकरण का फरमान जारी कर चुकी है। शिक्षा-चिकित्सा, रेल-बस सबके निजीकरण की प्रक्रिया चल रही है। कहीं घाटे तो कहीं प्रदूषण के नाम पर कारखाने बन्द हो रहे हैं। कृषि क्षेत्र में भी उदारीकरण का कहर बरपा हो रहा है।

उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों पर अमल के मामले में राज्यों की वामपंथी या कांग्रेसी सरकारें भी किसी मायने में भा.ज.पा. और उसकी सहयोगी पार्टियों से पीछे नहीं हैं।

मज़दूरों-कर्मचारियों की यूनियनों का दलाल, सुधारवादी नेतृत्व आज पूरी तरह बेनक़ाब हो चुका है। सभी हड़तालें या तो कुचल दी जा रही हैं या रस्मी कवायद बनकर रह जा रही हैं।

लेकिन गतिरोध की यह स्थिति क्या किसी नई शुरुआत की संभावनाओं का संकेत नहीं दे रही है?

राहुल फाउण्डेशन का पता बदलने की सूचना

कृपया 'राहुल फाउण्डेशन' का वर्तमान पता दर्ज कर लें:

राहुल फाउण्डेशन

69, बाबा का पुरवा
पेपरमिल रोड, निशातगंज
लखनऊ- 226 006

दायित्वबोध कार्यालय स्थानान्तरण सूचना

'दायित्वबोध' का सम्पादकीय कार्यालय अब लखनऊ से दिल्ली स्थानान्तरित हो गया है। कृपया अब निम्नलिखित पते पर ही पत्र व्यवहार करें:

द्वारा: सत्यम वर्मा
81, समाचार अपार्टमेण्ट
मयूर विहार, फेज-1
दिल्ली-110091
फोन नं. 2711136

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
संपादक : डा. दूधनाथ। सम्पादकीय पता : द्वारा ओ.पी. सिन्हा, 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006, सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।